Chapter-3

तृतीय परिच्छेद :

"गुजरात के प्रमुख सन्त-कवि — जीवन और कृतित्व"

तृतीय परिच्छेद

"गजरात के प्रमुख सन्त-कवि -- जीवन और कृतित्व"

गुजरात में सन्त-साधना की पृष्ठभूमि एवं सम्प्रदायों का अध्ययन कर चुकने पर अब हम गुजरात के प्रमुख सन्त कवियों के जीवनवृत्त एवं कृतित्व पर प्रकाश डालेंगे। प्रस्तुत सामग्री को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :-

:१: प्रस्तावना कालीन सन्त-कवि : सं.१२५० से सं.१५५० :

:२: मध्यकालीन सन्त-कवि : सं.१५५० से सं.१६०० :

प्रस्तावना कालीन सन्त-कवियों में हमने केवल उन्हीं प्रमुख सन्तों का सामान्य परिचय दिया है जिनकी ज्ञान-विदग्ध वाणी ने गुजरात की सन्त-साधना को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष-रूपेण प्रभावित किया है तथा जिनका सम्बन्ध गुजरात से किसी न किसी रूप में अवश्य रहा है। अर्थात् :-

:१: वे सन्त, जिनका जन्म गुजरात में किन्तु कार्य-क्षेत्र इतर प्रदेश, जैसे :- स्वामी चक्रधर।

:२: ऐसे सन्त, जिनका जन्म इतर-प्रदेश किन्तु कार्य-क्षेत्र गुजरात, जैसे :-मीराँबाई और पीपा।

:३: कुछ ऐसे सन्त, जिनका जन्म एवं कार्य-क्षेत्र इतर-प्रदेश किन्तु यात्रार्थ गुजरात आगमन, जैसे :- कबीर, रैदास आदि।

संतों की घुमक्कड़ी प्रवृत्ति ने उन्हें कहीं का बाँध कर नहीं रखा। वे तो गंगा की लहरों की भाँति किनारों को तोड़ स्वच्छन्द विहरने वाले रमते जोगी थे। इस रूप में इन सन्तों द्वारा भारत का शायद ही कोई कोना अछूता रह पाया हो, फिर भी गुजरात से संपर्कित जिन प्रारम्भ-काल के सन्तों के उल्लेख उपलब्ध हुए हैं उनका चलता-सा परिचय देना यहाँ समीचीन होगा।

मध्यकालीन गुजराती सन्त काव्य का अनुशीलन इस प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है। प्रस्तुत परिच्छेद के अन्तर्गत गुजरात के ऐसे संतों के जीवन एवं कृतित्व का परिचय दिया गया है जिन्होंने साधना के साथ साथ अनुभूत सत्य

को वाणी के माध्यम से व्यक्त किया है। गुजरात के अधिकांश संतों ने साधुभाषा : हिन्दी : तथा गुजराती दोनों में रचनाएँ लिखी हैं। जैसा कि प्राक्कथन में स्पष्ट किया जा चुका है, इस परिच्छेद में हम केवल उन्हीं सन्तों को लेंगे जिनकी हिन्दी-वाणी उपलब्ध होती है तथा उनके अध्ययन को भी हम उनकी हिन्दी रचनाओं तक ही सीमित रखेंगे। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य प्रतीत होता है कि केवल गुजराती में रचना करने वाले सन्तों तथा उनकी गुजराती रचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रतिपाद्य विषय नहीं है।

:१: प्रस्तावना-कालीन सन्त कवि : सं.१२५० से १५५० :

:१: चक्रधर : सं.१२५० – १३३० :

महानुभाव सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी चक्रधर का जन्म भरवस नामक क्षेत्र में : भड़ौच में : सं.१२५० में हुआ था। इनके पिता विशालदेव मल्लदेव राजा के प्रधान थे। पूर्वाश्रम में इनका नाम हरिपालदेव था। इनकी पत्नी कमला उषा थीं जो इन्हें अत्यन्त प्रेम करती थीं, किन्तु एक बार जुए में सभी कुछ हार जाने के बाद ये अपनी पत्नी के सामने आकर हाथ फैलाने लगे और बदले में निराशापूर्ण उत्तर पाते ही इनका हृदय टूट गया। तुलसीदास की भाँति इनके जीवन में भी एक महान परिवर्तन आया और घर-बार त्याग कर वे रामटेक की यात्रा के निमित्त महाराष्ट्र की ओर चल पड़े। विदर्भ के गोविन्द प्रभु से इन्होंने दीक्षा ली और वहीं इनका नाम चक्रधर पड़ा। कहा जाता है कि इनके बढ़ते हुए यश को देख संवत् १३३० में प्रसिद्ध पंडित हेमाद्रि द्वारा इनकी हत्या हुई।[१] महानुभाव सम्प्रदाय के अनुयायियों का यह विश्वास है कि हत्या के बाद भी वे जीवित रहे और उत्तरापथ को चले गये।[२]

---

१. 'मराठी सन्तों का सामाजिक कार्य' डॉ.कोलते पृ.८-९।
२. वही पृ.९।

चक्रधर की 'चौपदी' अत्यन्त प्रसिद्ध है। इनकी भाषा मराठी गुजराती मिश्रित हिन्दी है। कुछ शब्द खड़ी बोली के क्रियारूपों की स्वतन्त्र सत्ता का निर्देश करते हैं।[1]

:२: कबीर साहब : सं.१४५५ -१६वीं शती पूर्वार्द्ध :

कबीर साहब भारतीय सन्त-साहित्य के देदीप्यमान आलोक-स्तम्भ हैं। हिन्दी-साहित्य की तो ये महान विभूति हैं। अतः इनके विषय में जितना कुछ लिखा गया है, उसका पिष्ट-पेषण करना निरर्थक है। यहाँ हम कबीर को मात्र गुजरात की सन्त-साधना के संदर्भ में देखना उचित समझते हैं।

यह सच है कि कबीर गुजरात के नहीं थे, फिरभी उनकी अनुपम वाणी एवं पंथ का प्रसार गुजरात में जितना व्यापक है कदाचित उतना किसी गुजराती सन्त का भी नहीं। द्वितीय परिच्छेद के अन्तर्गत गुजरात में कबीर-पंथका परिचय देते हुए हमने यह बताने का प्रयत्न किया है कि गुजरात में कबीर-साहब द्वारा रोपा गया 'अक्षय-वट' कालान्तर में किस प्रकार पल्लवित हुआ। अपने पंथ के प्रचार एवं प्रसार हेतु कबीर के गुजरात आगमन के उल्लेख हमें जगह जगह उपलब्ध होते हैं।[2] गुजरात में उनके भ्रमण का उल्लेख प्राय: सूरत, सोरठ और गिरनार से जोड़ा

---

१. हिन्दी को मराठी सन्तों की देन — आ. विनय मोहन शर्मा।

२. :अ: मिडिवल मिस्टिसिज़्म आफ इंडिया, आ. क्षितिमोहन सेन पृ.६८।
:ब: उत्तरी भारत की संत-परम्परा, आ. परशुराम चतुर्वेदी पृ.२८७।
:क: कबीर अने कबीर संप्रदाय — श्री. किशनसिंह चावड़ा, पृ.१४१।

जाता है । इस संदर्भ में सर्व प्रसिद्ध किंवदन्ती 'कबीर-वट' की है जिसके विषय में यह कहा जाता है कि जीवा और तत्वा नाम के दो भाइयों ने सद्गुरु की खोज में कबीर को पाया जिन्होंने कबीर साहब के सम्मुख वड़ की दातुन में से वट-वृक्ष पल्लवित करने की याचना की ।[१] कबीर वस्तुतः घुमक्कड़ और फक्कड़ प्रकृति के मस्तमौला संत थे ।[२] उनके इस व्यक्तित्व से प्रायः सभी परिचित हैं । अतः उनका मनमौजी भ्रमणशील व्यक्तित्व[३] उन्हें गुजरात तक खींच लाया हो इसमें कोई आश्चर्य नहीं । कबीर-मन्दिर के महंतों के प्राचीन चरण चिन्हों को देखने से यह प्रतीत होता है कि गुजरात में कबीर साहब का आगमन सं.१५६४ के आसपास हुआ था ।[४] कबीर-वट के सामने लिखे हुए संवत् से भी इस कथन की सत्यता सिद्ध होती है ।

एक मत यह भी है कि कबीर साहब ने अपने औरस पुत्र कमाल को भी संतमत-प्रचार के लिए अहमदाबाद की ओर भेजा था ।[५] गुजरात के कतिपय संतवाणी संग्रहों में कबीर साहब की कुछेक गुजराती रचनाएँ अवश्य ही देखने में आती हैं, किन्तु इनकी प्रामाणिकता अभी संदिग्ध ही है ।[६]

---

१. देखिए— चरोतर सर्व-संग्रह, पृ.८२२ ।

२. 'कबिरा खड़ा बजार में लिये लुकाठा हाथ,
जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ ।'

३. 'भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरै उदास,
तीरथ बड़ा कि तीरथ दास ।' — बीजक

४. कबीर – संप्रदाय, किशनसिंह चावड़ा, पृ.१४०—४१ ।

५. देखिए— संत-काव्य, परशुराम चतुर्वेदी पृ.२२५ ।

६. उदाहरण के लिए देखिए कबीर का एक गुजराती पद :—
'जीवो रे मारी कायाना घड़नारा, काची रे राम मारी कोणे बनावी काया ।
घटडामां चंदा रे, घटडामां सुरज रे,घटडामां नवलख तारा जी ।
घटडामां ताळा ने, घटडामां कुंची रे, घटडामां खोलनवालाजी ।
घटडा[illegible] मां आंबाने घटडामां केरी रे घटडामां वेडण हारा ।
कहे कबीर सुनो भाई साधु, खोज्या सोय नर पाया ।'
—परि.प.सं, पृ.५२ पद १७ ।

इन रचनाओं में कुछ प्रक्षिप्त हैं तथा कुछ रूपान्तरित ; साथ ही, उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा की पंचमेल-खिचड़ी में गुजराती का पुट अन्य भाषाओं की तरह सहज भाव से घुल मिल भी गया है । फिरभी, इन सभी तथ्यों को परे रखकर हम एक बात निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि गुजरात के समग्र सन्त-साहित्य को जितना कबीर ने प्रभावित किया है उतना अन्य किसी भारतीय सन्त-कवि ने नहीं । इस प्रदेश की ज्ञान-धारा में कबीर की विचार सरणि इतनी गहरी उतर गयी है कि गुजराती सन्त काव्य को साधना और साहित्य के क्षेत्र में कबीर से नितान्त पृथक करके देखना अत्यन्त मुश्किल है । गुजरात के कबीरपंथी सन्तों में कबीर की विचारधारा और शैली का जो साम्य मिलता है वह तो [redacted] सम्प्रदायगत परम्परा-प्रदेय है, किन्तु गुजरात के प्रखर ज्ञानी-कवि अखा की वाणी में कबीर का जो भाव-साम्य [redacted] मिलता है, इस मत के समर्थन में यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। इस संदर्भ में इन दोनों सन्तों के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं :-

कबीर :

'कस्तूरी कुंडल बसे मृग ढूंढै बन माहिं,
ऐसे घट में पीव है दुनिया जाने नाहिं ।'

अखा :

'मिरघ के पास कस्तूरी है,
सो जाय पत्थर को सूंघता है !
अखा आप पिछान बिना,
सब कोई ऐसे भूलता है ।'

'झूलणा' ७५ ।

कबीर :

'समुझ देख मन मीत पियरवा,
आसिक होकर सोना क्या रे ।
०० ०० ००

कहै कबीर प्रेम का मारग,
सिर देना तो रोना क्या रे ।'

कबीर, पृ.२८६ पद ६६ ।

अखा : 'प्रेम गली की खेलारी रे,
कोई है रे सोहागन नारी रे ।
प्रेम खेल है ऐसा रे ।
सो सिर जात अंदेसा रे ।'

—जकडी – १४ ।

कबीर :

'गगनघटा घहरानी साधो,
गगनघटा घहरानी ।
पूरबदिस से उठी है बदरिया,
रिमझिम बरसत पानी ।।'

– कबीर, पृ.२८३ – ८७ ।

अखा :

ज्ञानघटा चढ़ आई अचानक ज्ञानघटा चढ़ आई,
अनुभवजल बरखा बड़ी बुंदन, कर्म की कीच रेलाई ।''

— अक्षयरस, पृ.६८, पद ११ ।

वस्तुत: कबीर और अखा उत्तरी भारत तथा गुजरात की दो विशाल ज्ञानमार्गी धाराओं को जोड़ने वाले ऐसे जंगम-तीर्थ हैं जिनके बीच प्राय: दो शताब्दियों का अन्तराल है, फिरभी भाव, भाषा एवं शैली में अपूर्व साम्य है ।

:३: नरसी मेहता : : सं.१४७० – १५३६ के मध्य :

गुजरात के वैष्णव भक्तों में नरसी मेहता का नाम सर्व मुखर है, किन्तु वे मात्र भक्त ही नहीं ज्ञानी भक्त भी हैं ।[१] इन्होंने जहाँ एक ओर राधा और कृष्ण की

१: 'कविचरित' भा.१-२, पृ.५६ श्री.के.का.शास्त्री ।

शृंगारिक लीलाओं का निर्दोष वर्णन अत्यन्त तन्मयता पूर्वक किया है, वहाँ दूसरी ओर इनके वेदान्त विषयक पदों में सर्वात्मवाद की भावना स्पष्ट रूपेण प्रतीत होती है। इन्होंने कबीर की भाँति सभी जीवों की एकता में विश्वास करते हुए यह कहा है कि सब कुछ ब्रह्ममय है, ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। स्वर्ण और स्वर्णाभरण में जिस प्रकार कोई तात्त्विक भेद नहीं, परब्रह्म और जगत के जीवों में भी उसी प्रकार कोई भेद नहीं[1]. नरसी ने कनक-कुंडल का दृष्टान्त प्रस्तुत कर अविकृत परिणामवाद को स्पष्ट किया है जिसके माध्यम से कवि का उद्देश्य जीव-जगत और ब्रह्म की अनन्यता को सूचित करना ही है। स्वप्न दर्शन के द्वारा इन्होंने शंकर के मायावाद को भी स्पष्ट किया है।[2]. हम देखते हैं कि नरसी पर न चैतन्य का प्रभाव है और न वल्लभाचार्य का ही बल्कि उन्हें तो इससे पूर्व का भक्तिमार्ग ही अभिप्रेम है। इनका 'ब्रह्मवाद' और 'प्रेम मारग' वल्लभाचार्य के 'पुष्टिमार्ग' से नितान्त भिन्न कोटि का है।[3]. इनकी भक्ति पद्धति पर जहाँ भागवत्

---

१. 'अखिल ब्रह्माण्ड माँ एक तुं श्रीहरि,
जूजवे रूपे अनन्त भासे।
देहमां देव तुं, तेजमां तत्त्व तुं,
शून्य माँ शब्द थई वेद वासे।
पवन तुं, पाणी तुं, भूमि तुं भूधरा,
वृक्ष थई फुली रह्यो आकाशे।
विविध रचना करी अनेक रस लेवाने,
शिव थकी जीवन थयो ऐ ज आशे।
वेद तो एम वदे, श्रुति स्मृति शाख दे,
कनक कुंडल विषे भेद नो होये।' — एजन, पृ.४६२।

२. 'जागीने जोऊँ तो जगत दीसे नहिं,
ऊँघमां अटपटा भोग भासे,
चित्त चैतन्य विलास तद्रूप छे
ब्रह्म लटकां करे ब्रह्म पासे।' — एजन, पृ.४८६।

३. कविचरित – भा.१–२, पृ.५३।

और गीतगोविन्द का प्रभाव है । वहाँ ज्ञान-वैराग्य के पदों में ठीक उसी प्रकार कबीर की भावधारा का स्पष्ट उन्मेष है । नरसी और मीराँ दोनों की उपासना सगुण परक है । दोनों ही सखीभाव के भक्त कवि थे । अतः इनकी विशुद्ध कविता के ऊपर भले ही कबीर और रामानंद का प्रभाव न पड़ पाया हो, किन्तु जहाँ भक्ति को गौण बनाकर इन्होंने ज्ञान-वैराग्यपूर्ण काव्य-रचना की है वहाँ निश्चय ही कबीर और रामानंद का प्रभाव दृष्टिगत होता है ।[1]

नरसी मेहता :

'ज्यां लगी आतमा तत्त्व चीन्यो नहीं,
त्यां लगी साधना सर्व झूठी ।'

कबीर :

'आतम तत्त्व चीना बिना,
सब है झूठी सेव,
करे सो तो भ्रमणा
क्या तीरथ क्या देव ।'

नरसी मेहता की गुजराती रचनाओं में हारमाला, गोविन्द गमन, शामलदासनो विवाह, सुरत संग्राम, सुदामा-चरित, शृंगारमाला आदि प्रमुख हैं । इनके द्वारा रचित कुछ हिन्दी पद भी उपलब्ध होते हैं जिनकी प्रामाणिकता संदिग्ध ही है । भाषा की दृष्टि से भी इन पदों की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया जा सकता है । नरसी के कहे जाने वाले कुछ हिन्दी पद यहाँ दृष्टव्य हैं :

---

१. कबीर सम्प्रदाय, किशनसिंह चावड़ा पृ.१६० ।

म्हाने पार उतारो जी, थाने निज भक्तन की आन ।
हमरे अवगुन नेक न चितवो, अपनो ही करी जान ।।१।।
काम क्रोध मद लोभ मोह बस, भूल्यो पद निर्वान ।
अब तो सरन गही चरनन की, मत दीजो मोहिं जान ।।२।।
लख चौरासी भरमत भरमत, नैक न परी पिछान ।
भव सागर में बह्यो जात हौं, राखिए श्याम सुजान ।।३।।
हौं तो कुटिल अधम अपराधी, नहिं सुमरियो तेरो नाम
नरसी के प्रभु अधम उधारन, गावत वेद पुरान ।।४।।

: म.सु.सा. श्रीमंत संपतराम गायकवाड़,
बड़ौदा, द्वारा प्राप्त :

= २ =

कहाँ लगाई एती देर, अरे अरे साँवरे ।।टेक।।
हौं गुजराती सिव को उपासी, पूजौं साँझ-सबेर ।
भक्तिमर्म को सार न जानौं, हाँसी कराई मेरी बेर ।।
ऊँचे चढ़ि के टेर सुनाऊँ, अब सुनिये म्हारी टेर ।
क्या कहिं काज सँवारे भक्तन के, क्या निद्राने लिये घेर
नरसी के प्रभु अधम उधारन राखिये अबकी बेर ।।

: संतबानी संग्रह, भा.२, पृ.७३
वेल्वेडियर प्रेस, प्रयाग ।

उपर्युक्त दोनों पदों में मीरांबाई के पदों की ही शैली का अनुकरण सा प्रतीत होता है । अतः यह कहना कठिन है कि नरसी के कहे जाने वाले ये पद नरसी भगत के ही हैं । मीरांबाई की भाँति नरसिंह मेहता की ख्याति भी दूर दूर तक फैल चुकी थी और जिस प्रकार हिन्दी गुजराती के अनेक प्रक्षिप्त पद मीराँ के नाम से चल पड़े, उसी प्रकार नरसिंह के नाम से भी चल पड़ने वाले ऐसे पदों की संख्या कम नहीं।

:४: पीपा :

रामानन्द के निर्गुणिया शिष्यों में पीपा का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । डॉ. बडथ्वाल ने जनरल कनिंघम के मत को स्वीकार करते हुए पीपा का समय संवत् १४१० से १४६० तक माना है ।[१] उनके कथनानुसार पीपा गैंगरौनगढ़ : राजस्थान : के खीची चौहान राजा थे और अपनी छोटी रानी सीता सहित रामानंद जी के चेले हो गये थे ।[२] जनरल कनिंघम ने पीपाजी को जैतपाल से चौथी पीढ़ी में माना है ।[३] फर्कुहर ने इनका जन्मकाल संवत् १४८२ माना है ।[४] डा. त्रिगुणायत फर्कुहर के मत से पूर्णत: सहमत हैं ।[५] आ. परशुराम चतुर्वेदी ने पीपा का समय सं. १४६५-१४७५ के आसपास निश्चित किया है ।[६] पीपा कबीर के बड़े प्रशंसक थे, इस आधार पर हम उन्हें कबीर का समकालीन भी मान सकते हैं ।[७] प्रियादास के अनुसार पीपा गागरौनगढ़ के राजा थे । पहले वे देवी के उपासक थे, फिर बाद में देवी के ही आदेश से रामानंद के शिष्य हो गये । कहा जाता है कि पीपा जिस समय स्वामीजी के पास शिष्य होने के विचार से गये, स्वामीजी ने कहा कि मुझे राजा से कोई काम नहीं है । इस पर पीपा ने अपनी सारी संपत्ति गरीबों में बाँट दी । स्वामीजी ने पुन: आज्ञा दी कि पीपा से कहो कि वह कुएँ में गिर पड़े । पीपा कुएँ में गिरने ही जा रहे थे कि स्वामी जी ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना शिष्य बना लिया । जब पीपा के हृदय में भक्ति के अंकुर पूरी तरह

---

१. हि.का.नि.स. पृ.१०१ ।
२. वही पृ.१०१ ।
३. आर्कियालोजिकल सर्वे रिपोर्ट - भा.२, पृ.२६५-६७ ।
४. एन आउटलाइन ऑफ रिलीजस लिटरेचर ऑफ इण्डिया, फर्कुहर पृ.२३ ।
५. हि.नि.का.दा. पृ.२५ ।
६. उ.भा.स.प., पृ.२३६ : नवीन संस्करण :
७. वही पृ.२३६ ।

फूट पड़े, स्वामीजी ने एक वर्ष बाद गाँगरौनगढ़ आने का वचन देकर उन्हें बिदा कर दिया । एक वर्ष बाद पीपाने जब स्वामीजी को बुलाया तो कबीर, रैदास आदि बीस शिष्यों को लेकर स्वामी जी गाँगरौनगढ़ पधारे । पीपा ने स्वामीजी का अपूर्व स्वागत किया । कुछ दिन वहाँ रहकर स्वामीजी जब चलने लगे, तब पीपाने भी विरक्त होकर उनका साथ दिया । पीपा की छोटी रानी सीता भी हठ पूर्वक साथ हो गयीं । यहाँ से स्वामीजी द्वारका गये और कुछ दिन वहाँ रहकर काशी लौट आये ।[1] स्वामीजी ने अपने सम्प्रदाय का विस्तार करने के लिए अपने शिष्यों को देश के विभिन्न भागों में प्रचारार्थ नियुक्त किया जिसमें पीपा तथा योगानंद को स्वामीजी ने गुर्जरदेश में रहकर धर्म एवं भक्ति का प्रचार करने का आदेश दिया ।[2] काठियावाड़ में पीपागढ़ नामक स्थान बताया जाता है जहाँ पीपा काफी समय तक रहे थे । पीपाजी की गद्दी रामड़ा, बेटद्वारका, गाँगरौनगढ़ तथा काठियावाड़ में है ।[3]

गुरु ग्रन्थ साहिब में पीपा के एक पद का संग्रह मिलता है । इस पद के अन्तर्गत पीपा ने 'जोई पिंडे सोई ब्रह्मांडे' के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है । मानव-शरीर में ही इष्टदेव, मंदिर और समस्त चर जीव विद्यमान हैं । काया में ही धूप-दीप और नैवेद्य है । उसी काया में फूल, पूजन की समस्त सामग्रियाँ हैं । बिना कहीं आये-गये ही काया में नवों निधियाँ प्राप्त हो जाती हैं । जो कुछ ब्रह्मांड में दृष्टिगत है, वही पिंड में है । पीपा उसी परम-तत्त्व को प्रणाम करता है जो सतगुरु बनकर दिखायी देता है ।[4]

---

१. रामानंद सम्प्रदाय तथा हिन्दी सा. पर उसका प्रभाव- डॉ. बदरीनारायण श्रीवास्तव, पृ.२३,२४ ।
२. वही पृ.४७ ।
३. वही पृ.१८७ ।
४. गुरु ग्रंथ साहिब, रागु धनासरी, पृ.६९५ ।

प्राचीन काव्य विनोद : भाग.१ : में पीपा का 'उदाहरण-चूंदड़ी' शीर्षक एक गुजराती पद भी प्राप्त होता है ।[1]

:५: रोहीदास : रैदास ::—

स्वामी रामानंद के १२ शिष्यों में रैदास का नाम विशेष रूप से लिया जाता है । प्रियादास ने 'भक्तमाल' की टीका में रैदास के सम्बन्ध में जो तथ्य प्रस्तुत किये हैं, वे संक्षेप में इस प्रकार हैं :

:१: गुरु द्वारा शापित ब्रह्मचारी शिष्य ने रैदास के रूप में जन्म लिया, जिसे रामानंद ने आकर दूध पिलाया ।

:२: रैदास के बढ़ते हुए प्रताप को ब्राह्मण सहन नहीं कर सके । रैदास ने अपनी त्वचा के भीतर सोने का जनेऊ ब्राह्मणों को दिखाया ।

:३: चितौड़ की रानी झाली रैदास की शिष्या थीं ।

रैदास ने स्वयं को चमार जाति का कहा है ।[2] रामानन्द के अन्य शिष्यों ने भी रैदास को चमार अथवा 'ढोरों का व्यवसायी' कहते हुए माया का परित्याग करनेवाला बताया है ।[3] रैदास के समय को निश्चित करने में प्रायः विद्वानों में कोई एकमत नहीं, फिर भी अधिकांश उन्हें रामानन्द का समकालीन मानने के पक्ष में हैं । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने रानी झाली को राणा सांगा :सं.१५३६-१५८४: की बहिन मानकर रैदास का समय विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के

---

१. अन्तिम चार पंक्तियाँ देखिए —

'वण रसना गुण गाइ लो रे, वण बस्ती को देश,
वण पिंडनो ए आतमा रे, तासु करी लो साचो सनेह,
कहे पीपो एक रूप लीना, बनी कबनी बनाई,
जेणे जाणी ए चूंदड़ी रे, ते वस्तु रूपे धाई ।'-प्रा.का.वि.,पृ.२१६ ।

२. 'कह रैदास खलास चमारा'— 'ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार' आदि ।

३. गु.ग्र.सा., धन्ना भगत, रागु आसा, पद २ ।

प्राय: अंत तक माना है ।[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इन्हें कबीर के पश्चात् रामानन्द का शिष्य मानते हैं, क्योंकि रैदास ने अपने एक पद में कबीर और सैन नाई दोनों के तरने का उल्लेख किया है ।[2] डॉ. त्रिगुणायत ने इनकी संभावित जन्म तिथि १४७१ वि. मानी है, क्योंकि इसी संवत् में माघपूर्णिमा रविवार को पड़ती है ।[3] रैदास को अबतक काशी का रहनेवाला ही माना गया है जैसा कि उनके एक पद से भी यह स्पष्ट होता है —

> 'जा के कुटुंब सब ढोर ढोवंत,
> फिरहि अजहुँ बानारसी आसपासा।'

गुजरात में रैदास की वाणी का व्यापक प्रसार परिलक्षित होता है । यहाँ वे 'रोईदास' या 'रोहीदास' के नामसे प्रसिद्ध हैं । गुजरात के अनेक संतों ने 'रैदास' का उल्लेख 'रोहीदास' के नाम से किया है :

> 'नामदेव कबीर जी पीपा अरु रोहीदास,
> राम पोकार रवि कहे, परगट हुआ परकाश ।[4]
> —रवि साहेब

> 'भक्ति करे जो नीच हु प्रानी, याकु धन्य कहे मुनी ज्ञानी
> सैना, धना, पीपा, रोईदासा, गुनका गीध अजामेल कैसा ।'
> — प्रीतमदास [5]

सैना नाई के एक पद में भी 'रोहिदास' नाम मिलता है । पद की अन्तिम पंक्तियाँ देखिए —

> 'धन्य कबीरा, धन्य रोहिदास,
> गावे सैना न्हावी ।'[6]

---

१. उ.भा.सं.प., आ.परशुराम चतुर्वेदी पृ.२०३ ।
२. हि.सा.इ. पृ.८२ ।
३. हि.नि.का.दा. पृ.३२ ।
४. रवि. भा.स. वाणी, पृ. २५२ ।
५. प्री.दा.वा, पृ.१५१ ।
६.म.स.हि.दे. पृ.१३३ से उद्धृत ।

गजेटियर आफ इण्डिया[१] में रामानन्द के द्वादश शिष्यों में 'रोहीदास' नाम मिलता है। काशी में इन्हीं को 'रईदास' या 'रुईदास' के नाम से पुकारा जाता है। निष्कर्ष यह कि रैदास तथा रोहीदास भिन्न प्रतीत नहीं होते। गुजरात में रोहीदास नामका व इस प्रकार से कोई अन्य सम्माननीय संत हुआ हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। अत: हमें नि:संकोच भाव से यह मान लेना चाहिए कि रोहीदास अन्य कोई नहीं बल्कि रामानंद के कहे जाने वाले शिष्य रैदास ही है। संभवत: रोहीदास को भिन्न मानकर उनके नाम के पदों को अबतक रैदास के पदों से इसीलिए अलग रखा गया।[२] रैदास रचित हिन्दी गुजराती मिश्रित एक पद देखिए :

'हरे तै तो मनका जनम गुमायो,
तै तो फोकट फेरो खायो है।
रामनाम रंग एक है,
रोहिदास नो प्राण आधार।'[३]

नडियाद की ह.प्र. में संकलित रोहीदास का एक पद दृष्टव्य है[४]:-

'श्री रामधनी ताकु काहा कमी,
मनसा नाथ मनोरथ पूरे
अब सुखनिधान की बात बनी ।।राम ।।१।।

कोण काम रूपण की माया
करत फरत अपनी अपनी ।।
खाए न सके खरच नहीं जाने,
जीऊ शर रहेत भुजंग मनी ।।राम।।२।।

---

१. Gazeteer of India, Gujarat State, Surat District, P.247.
२. देखिए अ.म.भा., भा.२, पृ.२२७ तथा पृ.२४३।
३. अध्या. म.भा. भाग. २ पृ.२४३।
४. परमार्थ रत्नाकर : ह.प्र.: वि.सं. ३०१४, डा.पु. नडियाद।

सीव विरंची जाको पार न पावे
मे-बापरे की कोण गमी ।।
जाकी प्रीत नीरंतर हरीसु,
कहे रोहीदास बाकी सदा हो की ।।
रामधनी ताकु कहा कमी ।।३।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीरांबाई की भांति रैदास भी यद्यपि गुजरात के नहीं थे फिर भी उनकी विमल-वाणी का प्रसार गुजरात तक परिव्याप्त था । रोहीदास तथा मीरांबाई के सम्बन्धों को लेकर अनेक गुजराती लोकगीत भी प्रचलित हैं ।[1]

निम्नलिखित आधारों पर रैदास को हम गुजरात से संपर्कित मान सकते हैं :—

:१: रैदास के गुजराती पद मिलते हैं । यद्यपि अधिकांश पद उनके हिन्दी पदों के रूपान्तर भी हैं ।

:२: गुजरात की 'रोहिदासी' नामक चमार जाति अपना सम्बन्ध रैदास से जोड़ती है ।[2]

:३: गुजरात में रैदास के आगमन एवं निवास के उल्लेख एवं प्रमाण मिलते हैं ।[3]

---

१. एजी तमे मारी सेवाना सालीगराम
मीरां तमे घेर जावने !
तमे रे राजानी कुंवरी ने अमे छये जातना चमार,
जाणशे तो मेवाड़ो कोपशे ने चित्रोडो व चोपे देशे गाल
मीरां तमे घेर जावने । 'सोरठी संतो' झवेरचंद मेघाणी।

२. जी. डब्ल्यू. ब्रिग्स, दिचमार्स, रिलीजस लाइफ आफ इंडिया सिरीज़, पृ.२१० ।

३. 'रामानंद संप्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव' पृ.२३-२४, तथा 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' पृ.२४८-४९ ।

:६: मीरांबाई : : सं.१५६०–१६०३ :

मीरांबाई यद्यपि जन्म से गुजराती नहीं थीं तथापि उनके जीवन के प्रायः अन्तिम १५ वर्ष गुजरात में ही व्यतीत हुए ।[1] गुजरात में मीरां की भावप्रवण वाणी का प्रसार कदाचित नरसी मेहता से भी अधिक है ।

मीरांबाई की जीवन धारा ही उनकी भक्ति भावना का क्रमिक विकास है । ये वस्तुतः सम्प्रदाय मुक्त, गुरु-शिष्य-परम्परा-विहीन परम वैष्णव भक्तिन थीं ।[2] कुछ विद्वानों ने मीरां को रैदास की शिष्या बताने का प्रयत्न किया है जिनका आधार मीरां रचित कुछ ऐसे पद हैं जिनमें मीरांबाई ने [redacted] अपने को रैदास की शिष्या कहा है, किन्तु ऐसे पदों की प्रामाणिकता अभी तक संदिग्ध ही है । ये पद रैदासी सन्तों द्वारा रचित भी हो सकते हैं, जिन्हें कालान्तर में मीरांबाई के नाम से जोड़ दिया गया हो । ऐतिहासिक दृष्टि से भी रैदास तथा मीरांबाई के कालों में बहुत बड़ा अन्तर है । इस संदर्भ में कुछ विद्वानों का यह मत है कि गुरु की परोक्षवाणी द्वारा संभवतः मीरांबाई ने ज्ञान प्राप्त किया होगा ।[3] कुछ भी हो, गिरधर नागर के सगुण रूप की [redacted] साधिका मीरां का एक रूप निर्गुण परक भी है, इसमें सन्देह नहीं । अष्टछाप के कवियों की पदावली से तुलना करने पर यह स्पष्ट विदित होता है कि मीरांबाई के पदों का ध्येय पुष्टि मार्गीय नहीं था और न अष्टछाप के कवियों की भांति कृष्णलीला का वर्णन करना ही । उनके हृदय में कृष्ण की जो मूर्ति है उस पर किसी सम्प्रदाय की छाप न होकर स्वानुभव का प्रकाश है । कबीर की भांति मीरां ने भी प्रेमलक्षणाभक्ति

---

१. कवि चरित, भाग. १ पं. के.का.शास्त्री ।
२. देखिए — 'मीरां की भक्ति और उनकी काव्य-साधना का अनुशीलन' डॉ. भगवानदास तिवारी ।
३. मीरांबाई—एक मनन, पृ.४७, डॉ.मंजुलाल मजमुदार ।

अथवा दशधाभक्ति का अनुसरण किया है । मीराँबाई की अभिव्यक्ति का ढंग भी संत परम्परानुमोदित है[1]· जिसमें शुद्धाचरण, शील, बरन एवं पिंड के रहस्य की चर्चा की गयी है ।[2].

कबीर के समकालीन तथा उनके पुरोगामियों में से कबीर को छोड़कर रामानंद के अधिकांश शिष्यों की यह विशेषता रही है कि निर्गुण के प्रति अपनी ऊँची से ऊँची भावना को मूर्ति के समक्ष प्रकट करने में उन्होंने कोई प्रत्यक्ष विरोध नहीं माना। नामदेव विठोबा की मूर्ति के समक्ष घुटने टेककर निर्गुण निराकार की स्तुति करते थे और उनके शिष्य शालिग्राम की भी पूजा किया करते थे । मीराँ की साधना भी कुछ इसी प्रकार की है । उनका ब्रह्म कबीर के निर्गुण ब्रह्म से काफी मेल खाता है । अन्तर सिर्फ इतना है कि मीराँ को मूर्ति से चिढ़ नहीं थी और इसीलिए प्रियादास ने `भक्तमाल` की टीका में उन्हें अनन्य मूर्ति पूजक कहा है । मीराँबाई की साधना के विषय में कुछ विद्वानों के मत इस प्रकार हैं —

:१: `यद्यपि मीराँबाई, व्यवहारतः सगुणोपासिका थीं और कृष्ण की उपासना रणछोड़ के रूप में किया करती थीं, फिरभी यह सच है कि उनके कहे जाने वाले पदों में निर्गुण विचारधारा स्पष्ट दीखती है । उन्होंने अपनी प्रेम सम्बन्धी विनय कृष्ण एवं ब्रह्म दोनों के प्रति एक साथ की है।.. प्रेमिका होती हुई भी वे ज्ञान की गली से चलती हैं।[3]`

डा. पीताँबरदत्त बड़थ्वाल।

---

१. नामदेव :— `सब गोविन्द है, सब गोविन्द बिन नहीं कोई।`
मीराँबाई :— `सब घर दीसे आतमा`।

२. `तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं, जैसे सूरज घामा । और भी, `पचरंग चोला पहर सखी, मैं झिरमिट खेलन जाती।`

३. हिन्दी काव्य में निर्गुण—सम्प्रदाय ।

:२: 'मीरांबाई का वातावरण सगुणोपासक भक्तों तथा निर्गुण पंथी सन्तों दोनों द्वारा न्यूनाधिक प्रभावित था और उन दोनों के साधकों के सत्संग का इन्हें सुअवसर मिल चुका था।'[१]

— आ. परशुराम चतुर्वेदी।

:३: 'मीरांबाई शुद्ध सगुणोपासना की परम्परा में तो कदापि नहीं आ सकतीं अपितु वह नाथ परम्परा के ही अधिक निकट पड़ती प्रतीत होती हैं।'[२]

— पद्मावती 'शबनम'।

सच तो यह है कि दर्शन, पंथ एवं मतमतान्तरों से परे मीरां की साधना विशुद्ध प्रेममूलक थी। वे सभी मार्ग जिनसे प्रियतम का मिलन हो सके, मीरां ने निर्विरोध भाव से उन पर चलने की तत्परता दिखायी है।[३] प्रिय का प्रेम यदि उन्हें रणछोडराय के मन्दिर में मिला तो वे वहां गयीं और यदि 'साधु की संगत' में मिला तो वे वहां भी गयीं।

मीरांबाई जन्म से यद्यपि राजस्थान की थीं किन्तु उनकी सम्मोहन वाणी ने उन्हें भारत व्यापी बना दिया/बंगाल से लेकर सुदूर दक्षिण तक उनकी वाणी का प्रसार है। वे गुजरात की न होकर भी गुजराती के श्रेष्ठ कवियों में स्थान प्राप्त करती हैं।[४] इसका कारण यह भी है कि मीरां की

---

१. मीरां स्मृति ग्रंथ, पृ. ६४।
२. मीरां—एक अध्ययन, पृ. ११२।
३. 'चालां वाही देस प्रीतम चालां वाही देस,
कहो कुसुम्बी सारी रंगावां कहो तो भगवा वेस।'
४. देखिए—'मीरांबाई'— भानुसुखराम निर्गुणराम मेहता।

काव्य साधना की परिणति गुजरात की अक्षय निधि है ।[१] इनके द्वारा रचे गये गुजराती पद निश्चय ही मीरां के काव्य की प्रौढ़ता के परिचायक है । भाषा और भाव की दृष्टि से भी वे अत्यन्त सरस और सुमधुर हैं । भक्ति की आधारभूमि का जो अपूर्व समन्वय इन पदों में देखने को मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है ।[२] इस रूप में मीरांबाई हिन्दी की ही नहीं गुजराती की भी श्रेष्ठ कवयित्री हैं । उनके गुजराती पदों को प्रक्षिप्त समझ कर हम उनकी अवहेलना नहीं कर सकते ।

डॉ. भगवानदास तिवारी ने मीरां की वाणी का अनुशीलन करते हुए यह कहा है कि मीरां के हिन्दी पदों की संख्या ४६१४ है । गुजराती पदों की संख्या ८१७ है । किन्तु इनमें से अधिकांश पद विभिन्न भाषा भाषियों द्वारा मीरांभाव की देन हैं । हिन्दी में मीरां पदावलियों की संख्या ४१ है, गुजराती में ८ पद संग्रहों में मीरां के पद हैं । देश-विदेश की सब हस्तलिखित प्रतियों की संख्या २३ है ।

---

१. उदाहरणार्थ देखिए मीरां का एक गुजराती पद :—

हुं ऊंचा ऊंचा आभमां ने ऊंचा ऊंचा डूंगराजी
ऊंडी रे गुफामां मारो दीवडो बले रे, दीवडो०
लाख लाख चंदा चलके कोटि कोटि भानु रे,
दीवडा आगाडी मारा भांखा पडे रे,
भरमर भरमर बरसे मोतीडा नो मेहूलो रे
सुरता अमारी एतो भीलवा पडे रे,
बाई मीरा कहे प्रभु गिरधर ना गुण
सतगुरु दीधो मारो दीवडो बले रे। —मीरां के गुजराती पद पृ.६७।

२. देखिए—'मीरां के गुजराती पद, पृ.८४ डॉ.अम्बाशंकर नागर : लेख—क.मु.: हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ आगरा विश्व विद्यालय, वर्ष३, अंक ३ से प्रति मुद्रित :

अंग्रेजी में मीरां पदावली के २ अनुवाद तथा बंगला में मीरां पदावली सम्बन्धी २ पुस्तकें छपी हैं। पूना की इंदिरा राय ने मीरां के नाम पर चार ग्रंथ रचे हैं जो मीरां के नहीं कहे जा सकते।[1]

मीरां के मूल पदों की संख्या का अनुमान लगाना टेढ़ी खीर अवश्य है फिरभी संवत् १६४२ की डाकोरवाली हस्तप्रति[2] तथा नवीन अनुसन्धान के आधार पर[3] मीरां रचित कुल १०३ पदों का अनुमान किया जाता है। इनके गेय रूपों की संख्या चार गुनी है तथा शाब्दिक पाठान्तरों की संख्या हजारों में है।

:७: शेख बहाउद्दीन बाजन :: सं.१४४४ से १५६२ :

इनका समय ६१२ हिजरी अर्थात् विक्रम की पंद्रहवीं शती उत्तरार्द्ध माना जाता है। 'गूजरी' के कवियों की एक लम्बी परम्परा इस भूभाग में प्राचीनकाल से उपलब्ध होती है। इन सभी मुसलमान सन्तों की भाषा जिसकी प्रकृति खड़ीबोली की है, 'दखिनी' के साथ अपूर्व साम्य रखती है। इस परम्परा के सूफी सन्तों में शेख बहाउद्दीन बाजन का नाम अत्यन्त प्राचीन तथा प्रमुख है। भाषा की दृष्टि से इनकी रचना का एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

---

१. डॉ. भगवानदास तिवारी द्वारा लिखित दि.२५.३.६५ के एक पत्र के आधार पर

२. उक्त हस्तप्रति सन् १६३५ ई. तक डाकोर में सुरक्षित थी, किन्तु कलकत्ता विद्यापीठ के हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री ललिताप्रसाद शुक्ल इसे वहां से ले गये। इसमें मीरां के कुल ६८ पद हैं।

३. 'मीरां की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन
—डॉ. भगवानदास तिवारी।

'यूं बाजन बाजे रे इसरार छाजे
मंडल मन में धमके,
रबाब रंग में झमके,
सूफी उन पर ठमके,
यूं बाजन बाजे रे इसरार छाजे ।[१]

:८: काजी महमूद दरियायी : : संवत् १५२२ :

सोलहवीं शती पूर्वार्द्ध के सूफी सन्तों में इनका नाम उल्लेखनीय है । इनकी रचना का एक उदाहरण प्रस्तुत करना यहाँ समीचीन होगा —

'पाँचों वक्त नमाज गुजारूँ,
दायम पढ़ूँ कुरान ।
खावो हलाल बोलो मुख साचा,
राखो दुरुस्त ईमान ।[२]

:९: मांडण : : जन्म सं. १५३६ :

मांडण बंधारो का समय विक्रम की सोलहवीं शती पूर्वार्द्ध निश्चित किया जाता है ।[३] षट्पदी चौपाई का सर्वप्रथम रचयिता मांडण का नाम प्रस्तावना कालीन सन्त कवियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । अखा को जो उर्वरा काव्यभूमि मांडण से परम्परागत प्राप्त हुई वह किसी से छिपी नहीं है ।[४] इनके काव्य ग्रन्थों से इनके जीवन-परिचय के विषय में जो सामग्री मिलती है वह इस प्रकार है :१: ये मूल सिरोही के निवासी तथा जाति के बंधारा थे । :२: इनकी माता का नाम मेघू था । :३: पिता का नाम हरि था ।

---

१. 'गुजरात की हिन्दी सेवा' डॉ. अम्बाशंकर नागर ।
२. वही डॉ. अम्बाशंकर नागर ।
३. 'कविचरित' भा. १-२, पृ. ७८ ।
४. देखिए — 'अखो एक अध्ययन' [redacted] उमाशंकर जोशी — पृ. ७२ ।
: अखो अने मांडण :

:४: माडण ने अपने को जोशीमदन का शिष्य बताया है ।[१]

इनका सर्वप्रसिद्ध प्रमुख ग्रन्थ 'प्रबोध बत्रीसी' है जो षट्पदी चौपाइयों में रची गयी ३२ वीसियों : २०–२० षट्पदी चौपाई में : का संग्रह है । अखा के छप्पा और माडण की 'प्रबोध बतीसी' की तुलना करने पर विचारों, आध्यात्मिक भावों तथा शैली में एक विशेष प्रकार का साम्य मिलता है । माडण को लोकमानस का जो ज्ञान था उसीके आधार पर चार पाँचसो के आसपास प्रचलित कहावतों का समावेश उसने 'प्रबोध बतीसी' में किया है । अखा के छप्पा और माडण की षट्पदी की तुलना करते हुए श्री.उमाशंकर जोशी ने स्पष्ट कहा है कि माडण का कार्य अत्यन्त व्यवस्थित है, कवि की अपेक्षा विशेषतः वह एक कोषकार है जिसका मुख्य उद्देश्य प्रचलित कहावतों का संचय करना है ।[२] जबकि अखा के छप्पों में माडण की सी सुव्यवस्थित रचनाशक्ति नहीं है । माडण ने जिसे 'वीशी' कहा है, अखा ने उसे 'अंग' की संज्ञा दी है; परन्तु, वीशी में माडण ने २० चौपाईयों की जगह २१ या १६ नहीं होने दी हैं जबकि अखा ने इस प्रकार का कोई बंधन स्वीकार नहीं किया है । माडण का सबसे बड़ा योगदान यही है कि उसने सर्वप्रथम कहावतों, लोकोक्तियों तथा दृष्टांतों को पद्यबद्ध करने की प्रथा का श्रीगणेश किया इसीसे प्रभावित होकर तीन शती पश्चात् दयाराम ने 'प्रबोध-बावनी' की रचना की थी ।[३]

श्री. के.का शास्त्री ने माडण रचित अन्य ग्रन्थों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं । :१क: रामायण :हनुमंतोपाख्यान सहित:

---

१. 'कविचरित' भाग. १–२ पृ.७८ ।
२. अखो : एक अध्ययन पृ.७५ ।
३. वही पृ.८१ ।

:२: रुकमांगदकथा । :३: सतमामानु रूसणु । :४: पांडव-विष्टि । इसके साथ ही उन्होंने मांडण के दो पदों को उद्धृत किया है ।[१] माषा की दृष्टि से प्रथम पद की कुछ पंक्तियों को यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा —

सोइ दुवारका शशिहर सोहि मोहि सैअल संसारो
फेरी देउल अल सामधि कीऊला मंडणके दातारो ।।३।।[२]

मांडण की माषा में मराठी का पुट विशेष उल्लेखनीय है । 'मांडण चा' शब्द अति सामान्य है । 'चा' विभक्ति नरसिंह मेहता के पुराने पदों में मी मिलती है यही नहीं होइला, गैला, पीउला आदि रूपों में मी मराठी का पुट मिल जाता है । मांडण के काव्य में मी 'विठला' शब्द-प्रयोग मिलता है । इस आधार पर श्री.के.का.शास्त्री ने मांडण तथा नरसिंह मेहता के समकालीन होने की संमावना मी प्रकट की है ।[३] यहाँ मांडण का एक हिन्दी पद मी दृष्टव्य है :—

मजन करो राम का माई, छोड सब तन की चतुराई,
गठरी छोड दे घेली, आखर काको नहीं बेली.. मजन
करे बंदगी सोई बंदा, जीते जिंदगी सोई जिंदा,
फकीरी सोई रहत है फरता, साधु सोई रहत है रमता..मजन
हिंदु सोई धर्मकु जाणे, चले हक सो मुसलमाने,
सबीकु एक राह चलना, आखर तो खाक में मिलना,..मजन
समजके रहोगे न्यारा, साहेब का खेल अपारा,
मांडण की एही चतुराई, सुनो हो यार सुन माई ..मजन[४]।

नरसी की भाँति मांडण के हिन्दी पदों की प्रामाणिकता मी संदिग्ध है, किन्तु गुजराती संत साहित्य में अपनी गुजराती रचनाओं के आधार पर मांडण का विशेष महत्त्व है ।

---

१. 'कविचरित' माग. १—२, पृ. ७६—८५ ।
२. वही पृ. ८३ ।
३. वही पृ. ८४ ।
४. 'मजन रत्नाकर याने अमरवाणी' पृ.२४३ ।

इनकी कुछ हिन्दी जकड़ियाँ भी उपलब्ध होती हैं जिनपर अरबी-फारसी की स्पष्ट छाया है । गूजरी भाषा के स्वरूप निर्माण में माडण कृत ये जकड़ियाँ निश्चय ही अपना अपूर्व महत्त्व रखती हैं । हिन्दी संज्ञाओं, सर्वनामों तथा क्रियाओं पर गुजराती ध्वनियों का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है ।[1] अखा की जकड़ियों की पूर्व भूमिका के रूप में भी इनका विशेष स्थान है । माडण की जकड़ियों में नीति, उपदेश एवं वैराग्य की भावना है जबकि अखा की जकड़ियाँ रहस्यवादी भावधारा से ओत-प्रोत हैं ।

---

१. ऊँचे मैहेल कैहेल से कंचन, फूलु सैज बिछाना है,
ताजा माल नवाला हाजार, मन माने तब खाना है,
हस्ती घोड़ा माल खजैना, मुलक मुलक पर थाना है,
कहे माडण सुन दोस्त हुमारे, थिरना रैहेना जाना है ।
जतन किया था जीवका, फिर मरने का घर ना जोया,
चलते फैरी ब लगा जुलम से, कर पीसतावा फीर रोया
प्रेम खेतका बना वगीचा, नाम धणी का ना बोया,
कहे माडण सुन दोस्त हमेरे, क्या जागा फीर क्या सोया !
दरद बीराना सो नहि जाना, पड़ा पुराना को होजा
ले तसबी नहि खोज्या खलु मनलु, बसे नीरंजन मनदोजा ।
कैसे नाह्यो धायो बीन धर्मे, जप तप उठे चित खोजा,
कहे माडण सुन दोस्त हमारे, क्या एकादशी और क्या रोजा ।
—भवाई संग्रह पृ.५३ ।

[redacted]: २: मध्यकालीन सन्त-कवि : सं.१५५० से सं.१६०० :

गुजरात की संत-साधना को प्रभावित करने वाले प्रमुख सन्त-कवियों का परिचय `प्रस्तावनाकालीन सन्त-कवि` शीर्षक के अन्तर्गत हम प्राप्त कर चुके हैं । अब हम पूर्व तथा उत्तर-मध्यकाल के ऐसे सन्तों का परिचय प्राप्त करेंगे जिन्होंने हिन्दी-वाणी द्वारा ज्ञान गंगा की आराधना की है ।

पूर्व मध्यकाल : : सं.१५५० से सं.१७५० :

गुजराती सन्तों की साधना का यह युग अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है । सत्रहवीं शती के ज्ञान-गगन में अनेक दैदीप्यमान नक्षत्र जगमगा रहे थे जिनके मध्य में अखा और प्राणनाथ अपनी प्रखर ज्योति से आलोकित थे । इस काल के सन्तों का परिचय कालानुक्रम से प्रस्तुत किया जा रहा है :-

:१: हीरादास : : सं.१५५० -१६३५ :

निर्वाण साहब की शिष्य परम्परा के प्रसिद्ध संत हीरादास का समय सन् [redacted] १४६४ से १५७६ ई [1] तक माना जाता है । इनका निवास स्थान सूरत था । खिन्नी नामक एक गणिका के उद्धार की कथा इनके साथ जोड़ी जाती है । इस सम्बन्ध में निम्न लिखित पंक्तियाँ भी प्रसिद्ध हैं-

बिमल प्रेम पहचान के, खिन्नी धोया कलंक ।
बारा मुखी बहुरि लखे, खिन्नी नाम निष्कलंक ।।

इनके द्वारा रचित पद अधिकांश में उपदेशात्मक हैं तथा इनकी भाषा सधुक्कड़ी है । खड़ीबोली एवं ब्रजभाषा के रूपों से मिश्रित एक पद द्रष्टव्य है-

---

१. डॉ.अम्बाशंकर नागर : संतवाणी अंक ६,वर्ष ३ में प्रकाशित लेख `गुजरात के संत-कवि`।:

तेरी बाली उमरियाँ रे, दीवाना क्यों गफलत में राचेरी।
सच्चा हीरा तेरे हाथ न आवे, पाया तोहे काचे ।
चेत अभागा अवसर पै हो, हरि सुमिरन साचे री ।।
संत समागम उर नाहीं जाना, विषय रस पाचे ।
हरि कथा – कीर्तन सुख नाहीं, बिरहा अंग नाचे री ।।
आवागमन मिटत नाहीं, तेरा अजहु बड़ भागे ।
प्रीतपुरानी खोज पियारे, असली अनुरागे री ।।
अबकी बेर बिनती एक मानो, अवधू साच कह्यो ।
हीरादास हरिभजन बिन बहुरि नैन ● बह्यो री ।।

:२: समर्थदास : : संवत् १५५० – १६२० :

इनका मूल नाम बंकाजी था । इनका उपस्थितकाल सन् १४६४ ई से १५६४ ई.[१] बताया जाता है । समर्थदास का जन्म सिद्धपुर : उत्तर गुजरात : के एक वणिक परिवार में हुआ था । ऐसा प्रसिद्ध है कि सिद्धपुर के एक यवन हाकिम के यहाँ वे नौकरी करते थे । हाकिम की इनपर कृपादृष्टि थी, इस पर अन्य मुसलमान उनसे द्वेष करते । बंकाजी के रूप-गुण पर मुग्ध होकर हाकिम की युवा पुत्री ने बंका से विवाह करने का प्रस्ताव किया । बंकाजी के सिर यह एक धर्म संकट था । इसके कारण उन्हें काफी परेशानी भी उठानी पड़ी और रात्रि के समय वे साधुवेश में निकल पड़े ।[२] उन्होंने लोचनदास से दीक्षा ली और रमते-रमते सूरत जा पहुँचे । सूरत के तत्कालीन काजी को लक्ष्य करके उन्होंने कुछ पंक्तियाँ कहीं थीं जिनमें उसे 'बेहक का गानेवाला' तथा 'कुफ्र' कहा है ।[३] इनकी भाषा में जावना, आवना, गावना, पावना, हरावना

---

१. डा. अम्बाशंकर नागर : संतवाणी अंक ६, वर्ष ३ में प्रकाशित लेख 'गुजरात के संत कवि :

२. फा.गु.म.ग्र. पृ.३११ ।

३. हक लिखे सोई साई सच्चे, बेहक गाना छोड़ काजी
समर्थ की बान तोहे जहर लागे, तेरे दिल में कुफ्र बहुत है पाजी ।।

:४: माधवदास : : सं. १६०१ :

इनका जन्म सन् १५४५ ई. और स्वर्गवास सन् १५६६ में हुआ। इनके पिता मूल केलवाड़ा : मेवाड़ : परगना के सिसोदिया राजपूत थे, किन्तु वे सूरत में रहते थे। उनके पिता का नाम करवतसिंह था तथा माता का नाम हिरलदेवी था। कहा जाता है कि माधवदास ने अपनी युवावस्था में सजना नामक एक वणिक कन्या के साथ प्रेम किया था। प्रेम ने दृढ़ रूप पकड़ा, किन्तु माता के सदुपदेशों से वैराग्य जाग उठा और शरीर पर भस्म लगाकर संत समर्थदास को गुरु बना लिया।[1] इनका लिखा हुआ कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता परन्तु स्फुट पद प्रकाश में हैं, बहुत से पद अप्रसिद्ध भी हैं। इनके द्वारा लिखे हुए लगभग ५०० पद, ५८१ कुंडलियाँ, कुछ सवैये और रेख्ते आदि बताये जाते हैं।[2] इनकी बोध प्रद वाणी के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

रेख्ता — 'दुनिया के बीच कुछ दया रख दिल में,
छोड़ दे मस्ती तु इश्क केरी।[3]

संत माधवदास की वैराग्य भावना अत्यन्त हृदय-स्पर्शी है, किसी चोट खाये हुए हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति है। इनके पदों की भाषा भी ऊँचे घाट की है —

भ्रमर कलियां में लिपटायो ।।टेक।।
जल बिच सीप, सीप बिच मोती।
स्वाति जाके मुक्ता में समायो
वृक्ष भूमि में, बीज वृक्ष में।
वृक्ष जाके बीज में छुपायो ।।
चकमक में आग, मेंहदी में लाली।

१. फा.गु.म.ग्र., पृ.३१४।
२. डॉ.अम्बाशंकर नागर : संतवाणी अंक ६, वर्ष ३ 'गुजरात के संत कवि':
३. फा.गु.म.ग्र., पृ.३१४।

तैल कैसे तिल मैं सिरजायो ।।
तू ही हो मुझमैं, मैं हूँ तुझमैं ।
दोनों मैं 'माधवदास' दरसायो ।।

इनकी भाषा मैं तखत नशिन, जंजीर, बुजुर्ग जैसे अरबी फारसी के शब्दों की बहुलता है ।

:५: दादू दयाल : : संवत् १६०१ से सं.१६५६ :

दादू कबीर की ही भाँति भारतीय सन्त साहित्य के एक अनमोल रत्न थे । इनके जन्म, जाति एवं गुरु के विषय मैं विद्वानों के अनेक मतभेद हैं । कुछ इन्हें राजस्थान का ही मानते हैं, और कुछ जौनपुर का सिद्ध करते हैं, किन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि दादू जन्म से गुजरात के थे, जिनकी साधना का अधिकांश समय राजस्थान मैं व्यतीत हुआ ।दादू द्वारा रचित अनेक गुजराती पद तथा उनकी हिन्दी वाणी मैं गुजराती के ठैठ शब्दों का प्रयोग इस मत के समर्थन मैं एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि दादू गुजरात से संपर्कित थे । गुजराती सन्त साहित्य भी दादू से पूर्ण रूपेण प्रभावित है ।[१.]

आचार्य क्षितिमोहन सेन ने दादू का जन्म सन् १५४४ ई. अर्थात् सं.१६०१, फाल्गुनमास की शुक्लाष्टमी तिथि बृहस्पतिवार को माना है ।[२.] दादूपंथी तथा अन्य विद्वान[३] इनका जन्म : संवत् १६०१ : गुजरात के अहमदाबाद नामक स्थान मैं मानते हैं ।[४.] पंडित सुधार द्विवेदी के अनुसार दादू का जन्म काशी के पास जौनपुर मैं हुआ था ।[५.] दादूपंथियों का कथन है कि साबरमती के किनारे लोदीराम नागर ब्राह्मण को ये बहते हुए मिले ।

---

१. देखिए — 'संत दादू' पृ.१५ से ३२, पृ.स.सा.व.का., अहमदाबाद ।
२. 'दादू और उनकी धर्मसाधना' : 'पाटल' संत सा विशेषांक :
३. डॉ. शुकदेव बिहारी मिश्र 'परमार्थ सोपान', परिशिष्ट १, पृ.१५ ।
४. देखिए — डॉ. त्रिगुणायत 'हि.नि.का.दा., पृ.३५ ।
५. देखिए — 'दादूदयाल की बानी — सुधाकर द्विवेदी, काशी ना.प्र.सभा ।

डॉ. शुकदेव बिहारी मिश्र ने इनका असलीनाम 'महाबली' तथा जाति का धुन्ना बताया है ।[1] आचार्य क्षितिमोहन सैन ने भी इन्हें जाति का धुनिया बताते हुए कहा है कि ये बारह वर्ष की उम्र में अहमदाबाद छोड़कर सांभर चले गये और वहाँ से चार कोस की दूरी पर 'नराना' गाँव में रहने लगे ।[2] उन्हों ने दादू के धुनिया होने के अनेक प्रमाण भी दिये हैं । धुनिया [illegible] हिन्दुओं में भी हैं और मुसलमानों में भी । उनके कथनानुसार हिन्दू धुनियों की शाखा से मुसलमान धुनियों की शाखा बनी । धुनिया : पिंजारा : वर्ग में दादू के अनेक शिष्य मिलते हैं । पंजाब के पिंजारे भी दादू के भक्त हैं । ये पिंजारे वर्ष के एक भाग में रूई धुनने का काम करते हैं और दूसरे भाग में चमड़े : मोट : की सिलाई करते पाये जाते हैं । संभवत: इसलिए सुधाकरजी ने दादू की जाति को मोची समझ बैठने की शंका उठायी है ।[3] श्री. चन्द्रिकाप्रसाद ने उनका जन्म स्थान अहमदाबाद बताते हुए कहा है कि उन्होंने १८ वर्ष की अवस्था में अहमदाबाद छोड़ा, इसके बाद ६ वर्षों तक मध्यदेश में नाना स्थानों में भ्रमण करते रहे, इसके पश्चात् वे सांभर में आये । कई वर्ष वहाँ रहकर आमेर में रहे । उस समय जयपुर के राजा मानसिंह के पिता भगवानदास राजा थे । दादू आमेर में १४ वर्ष तक रहे । घूमते घामते नराणा आयें और सन् १६०३ ई. में ५८ वर्ष ढाई मास की आयु में उनकी मृत्यु हुई ।[4]

---

१. परमार्थ सोपान , एपेन्डिक्स १, पेइज : १६ ।

२. दादू और उनकी धर्म-साधना : 'पाटल' संत सा. वि. :

३. दादू दयाल की बानी भा. १, पृ. १ ।

४. स्वामी दादूदयाल की वाणी — चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी ।

गुरु : दादू के गुरु कौन थे इस विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं । 'गार्सा द तासी' के अनुसार दादू रामानन्द की शिष्य-परम्परा में छठे शिष्य थे । जनश्रुति के आधार पर दादू की गुरु प्रणालिका इस प्रकार है :—

रामानन्द
।
कबीर
।
कमाल
।
जमाल
।
विमल
।
बुड्ढन
।
दादू

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने भी बुड्ढन या वृद्धानन्द को दादू का गुरु स्वीकार किया है[1]. जबकि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उनको कमाल का शिष्य माना है ।[2]. आचार्य क्षितिमोहन ने दादू के गुरु बुड्ढन को निरंजनराय कहा है । उन्होंने इस संदर्भ में एक पद भी उधृत किया है—

'रहै जो सात बरस घर माँही,
फिर दिथो दरश निरंजनराई,[3].

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने दादू को कबीरमार्ग का ही अनुयायी बताते हुए कहा है कि 'दादूदयाल का गुरु कौन था, वह ज्ञात नहीं, पर कबीर का इनकी बानी में बहुत जगह नाम

---

१. उ.भा.सं.प. पृ.४१३ ।
२. हि.सा.भू. पृ. ४६ ।
३. कबीर मंसूर, पृ.६३० ।

आया है और इसमें कोई संदेह नहीं कि ये उन्हीं के मतानुयायी थे ।[1] दादू के गुरु के सम्बन्ध में विद्वानों के अनेक मतभेद हो सकते हैं किन्तु इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि दादू पर कबीर-वाणी का स्पष्ट प्रभाव पड़ा था । इस संदर्भ में डॉ. त्रिगुणायत का मत उचित ही है कि- 'दादू ने किसी जीवित मनुष्य को अपना गुरु नहीं बनाया था । वह कबीर को संभवतः अपना मानस-गुरु मानते थे । उनकी यह बात कबीर के प्रति अगाध और अनन्य श्रद्धाप्रधान उक्तियों से प्रकट होती है ।[2]

<u>दादू-वाणी :</u> कहा जाता है कि दादू ने लगभग बीस सहस्त्र रचनाएँ लिखीं थीं, परन्तु इनमें से अधिकांश रचनाएँ विलुप्त अथवा विनष्ट हो चुकी हैं । दादू-वाणी के जो संग्रह मिलते हैं उनमें से कुछ ये हैं :-

:१: सन्त दादू और उनकी वाणी - प्रकाशक राजेन्द्रकुमार, बलिया

:२: दादू दयाल की बानी - सुधाकर द्विवेदी
का. ना. प्र.सभा, काशी ।

:३: दादूदयाल का सबद - सुधाकर द्विवेदी,
का.ना.प्र.स., काशी ।

:४: स्वामी दादूदयाल की वाणी - चन्द्रिकाप्रसाद त्रिपाठी ।

:५: दादूदयाल की वाणी - वेल्वेडियर प्रेस, प्रयाग ।

दादू के दो शिष्यों ने इनकी बहुत सी बानियों का संग्रह किया था जिसका नाम 'हरडे वाणी' है ।[3] डॉ. सुकदेव बिहारी मिश्र ने सन् १९०२ की खोज रिपोर्ट के अनुसार दादूकृत अध्यात्म, कृत्य और समर्थन अंग नामक ग्रन्थों का उल्लेख किया है ।[4]

---

१. हिन्दी सा.इ. पृ.८६ का.ना.स.: तेरहवाँ संस्करण :
२. हि. नि. का. और दा, पृ.३८ ।
३. उ.भा.सं.पर. पृ.४१४ ।
४. देखिए - परमार्थ सोपान, एपेन्डिक्स-१ पृ.१६ ।

दादूदयाल की बानी के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि "दादू की बानी अधिकतर कबीर की साखी से मिलते जुलते दोहों में है, कहीं-कहीं गाने के पद भी हैं। भाषा मिली-जुली पश्चिमी हिन्दी है जिसमें राजस्थानी का मेल भी है। इन्होंने कुछ पद गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी में भी कहे हैं। कबीर के समान पूरबी-हिन्दी का प्रयोग इन्होंने नहीं किया है। इनकी रचना में अरबी-फारसी के शब्द अधिक आये हैं और प्रेम तत्त्व की व्यंजना अधिक है। ... दादू की बानी में यद्यपि उक्तियों का वह चमत्कार नहीं है जो कबीर की बानी में मिलता है पर प्रेमभाव का वह निरूपण अधिक सरस और गंभीर है। कबीर के समान खंडन और वाद-विवाद से इन्हें रुचि नहीं थी।[1] इस संदर्भ में दादू का एक पद दृष्टव्य है :-

भाई रे ! ऐसा पंथ हमारा ।
द्वै पख रहित पंथ गह पूरा अबरन एक अधारा
वाद विवाद काहू सौं नाहीं मैं हूँ जग तैं न्यारा
समदृष्टी सूँ भाई सहज में आपहि आप बिचारा ।

कबीर, नामदेव तथा नानक की भाँति दादू भी वस्तुतः भारतीय सन्त साहित्य के एक उज्ज्वल रत्न थे जिन्होंने अपने विचारों को अन्य सन्तों की अपेक्षा अधिक मनोहारी ढंग से अभिव्यक्त किया है। साधना के पथ में उन्होंने सहजमार्ग का अनुसरण किया है इसीलिए उनका ब्रह्म सम्प्रदाय-सहज सम्प्रदाय भी माना जाता है। प्रेम इनके साधना-पथ का दृढ़ संबल था। वे उस देश के हैं जहाँ सभी 'एकरस' हो चुके हैं।[2]

---

१. हि.सा. इ. पृ.८७।
२. कविता कौमुदी भाग. २. पृ.२७१, पद १०।

दादू के पद जितने मधुर हैं उतनी ही मधुर उनकी साखियाँ भी हैं। साखियों के अन्तर्गत उन्होंने गुरु महिमा, नाम स्मरण, प्रेम तथा विरह को अत्यधिक महत्त्व दिया है। उदाहरणार्थ :—

गुरु महिमा :

'दादू सबही गुरु किया, पसु पंखी बनराई।
पंच तत्त गुन तीनि मैं, सबही माँहि खुदाई ।।[1]

नाम स्मरण :

'दरिया यह संसार है, राम नाम निज नाव,
दादू ढील न कीजिए, कहं अवसर यह दाव ।[2]

प्रेम :

दादू पाती प्रेम की, बिरला बाँचै कोइ।
वेद पुरातन पुस्तक पढ़ै, प्रेम बिना क्यों होइ ।।[3]

विरह :

विरह जगावै दरद को, दरद जगावै जीव,
जीव जगावै सुरति को, पंच पुकारे पीव ।[4]

---

१. संत दादू, पृ.५१, साखी २५।
२. संत दादू, पृ.५२, साखी ४०।
३. संत दादू, पृ.५५, साखी ६२।
४. संत दादू, पृ.५५, साखी ६८।

:६: प्यारेदास (सं. १६२५)

माधवदास के शिष्य और उनकी गद्दी के अधिकारी प्यारेदास का जन्म सन् १५६६ : सं. १६२५ : में हुआ था।[१] ये काशी के रहनेवाले थे। काशी में बीरमती नामक वेश्या से आसक्त होकर ये अपना जीवन विनष्ट कर रहे थे। संत माधवदास ने इन्हें इस मोह से छुड़ाया और अपने साथ सूरत ले आये। इनके पदों में प्रेम तथा विरह की व्याकुलता है तथा आत्मनिवेदन की निखालस अभिव्यक्ति है। मार्मिकता की दृष्टि से उनका एक पद दृष्टव्य है —

खोजत खोजत हारी साजन तेरो देश कहाँ ।।टेक।।
साजन तोहे खोजत निकलत आया खड़ी दूर देश।
आजहु तेरा पता न पाया जल गयो जोबन वेश।।
काला केश बिलाय गये री शिर पै आय सफेदी।
नवरंग चीर फीके हो गये उड़ गई लाल महेंदी।।
अबतो बुढ़ापा आया म्यापन काँपन लागे शरीर।
नयन नासिका नीर बहत है देही में डूब गई पीर।।
पल-पल पिपुजी नाम पुकारके साद सुनो हो गुसाईं।
प्यारेदास जन करत विनती कहाँ हो माधव साईं।।

---

१. संतवाणी वर्ष ३, अंक १।

:७: ज्ञानीकवि अखा : : उप.काल.सं.१७०१ – ५ :

वेदान्त की सर्वोच्च भूमि पर पहुँचे हुए[१] अखा वस्तुतः ऐसे अनुभवसिद्ध[२] आत्मचिन्तक स्वतन्त्र ज्ञानी कवि थे[३] जिन्होंने अपने अद्वितीय व्यक्तित्व से गुजरात की सत्रहवीं शती की ज्ञानधारा को आप्लावित किया था । इन्हें कहीं गुजराती काव्य का अक्षय श्रृंगार कहा है,[४] तो कहीं ड्राइडन की उपमा से विभूषित किया है ।[५] सच तो यह है कि गुजरात में ज्ञानवाद की जो धूमिल परम्परा नरहर से लेकर माण्डण और धनराज तक चली आयी थी, उसे अक्षुण्ण बनाया अखाने ही । इस प्रकार गुजरात के समस्त मध्ययुगीन साहित्य में अखा का स्थान अप्रतिम है । अखा का काव्य मात्र आदर्श जीवन के निर्माण में ही उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ, अपितु इन्होंने संसार के अटपटे रंगों को काव्यमय बनाकर इतने मार्मिक ढंग से संजोया कि उसकी मोहिनी ने विद्वज्जन और सर्वसाधारण सभी को समानरूप से प्रभावित कर दिया । ज्ञान के संधान में इन्होंने अपने को खो दिया और दूसरों को इस पथ की सुलभता पैदा कर दी ।[६] अखा की ज्ञान चुनरी का रंग न केवल तद् युगीन

---

१. "He reached the highest stage that a vedantin aspires too. He had known the unity of Jiva and Is'vara; He had reached the final beautitude and became one with Brahman."
- Sahityakar Akhe, P.212.

२. श्री उमाशंकर जोशी, 'अखो : एक अध्ययन' ।
३. श्री.के.का.शास्त्री — कविचरित भाग १–२, पृ.५६० ।
४. आ.कुँवरचन्द्रप्रकाश सिंह — अक्षयरस : निवेदन :
५. श्री. मनसुखराम के मेहता — गु.क.ते.क., पृ.२३ ।
६. श्री.के.का.शास्त्री — क.च., भा. १–२, पृ.५८४ ।

कवियों पर ही चढ़ा बल्कि आधुनिक युग के अधिकांश कवियों की दृष्टि भी उसकी चकाचौंध से जगमगा उठी । इस रूप में यदि हम अखा को 'गुजरात का कबीर' कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं । इनकी वाणी भी कबीर की तरह जीवन के कटु अनुभवों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है । सच्ची बात कहने में ये कभी नहीं चूके । डाँट फटकार और अक्खड़पन में तो इन्होंने कबीर को भी मात कर दिया है ।[1]

ये जन्म से स्वर्णकार थे और संस्कारों से वैष्णव । अपने अनेक पदों में इन्होंने 'अखा सोनारा[2] अथवा मात्र सोनारा'[3] कहकर अपने को अभिहित किया है । इनका जन्म-स्थान जैतलपुर तथा निवास स्थान अहमदाबाद : देसाई की पोल, खाड़िया : था । बीस वर्ष की अवस्था में पिता के बिछोह, तत्पश्चात् पत्नी एवं छोटी बहिन की अकाल मृत्यु ने अखा के हृदय पर एक गहरी चोट पहुँचा दी ।

भरी जवानी में अपने सुखी संसार को लुटते हुए देख अखा के हृदय में वैराग्य के अंकुर फूट पड़े । ये अंकुर संभवत: उस समय पूर्णत: विकसित हो चुके थे जबकि अखा की एक धर्म बहिन[4] तथा कुछ विद्वेषी जाति बन्धुओं ने अखा की ईमानदारी पर सन्देह प्रकट किया ।[5] निर्दोष साबित होने के बावजूद भी अखा का मन इस संसार से उठ गया और सद्गुरु की खोज में वे घर से निकल पड़े । अनुभव की प्रयोगशाला में आत्मा का शोधन किया और मन को तपाया । वे जिस आत्मविश्वास के बल पर निर्भय होकर समाज के दूषित मिथ्याचारों एवं रूढ़ियों का विरोध करते हैं वह इसी का परिणाम है ।

---

१. गु.हि. ग्रंथ, डॉ.अम्बाशंकर नागर — पृ.२५ ।
२. देखिए पद ५२, ११६, ११९, १२१ ।
३. 'अखा लोहकुं पारस परसा,
   सोना भया सोनारा ।' भ.सा. पद ६ ।
४. कविचरित भा.१-२, पृ.५६३ ।
५. बृ.का.दो. भाग ३, पृ.१३ : प्रस्तावना :

<u>भ्रमण :</u> सद्गुरु की खोज में अखा घूमते घामते गोकुल गये[१]। जहाँ श्री. वल्लभाचार्यजी के चौथे पौत्र श्री गोकुलनाथ जी से उन्होंने वैष्णवी दीक्षा ली। वहाँ वे कुछ काल तक रहे भी, किन्तु ज्ञानी अखा को भक्तिमार्ग में अनुकूलता दिखाई न दी इस प्रकार का उल्लेख उन्होंने अपने एक छप्पा में भी किया है।[२] अनुभवार्थी अखा ने अपनी बुद्धि को बेचकर गुरु के चरणों में जड़ शिष्य की तरह पड़े रहने की अपेक्षा आत्मा का दीप जलाकर सत्य की प्रतीति करना अधिक उचित समझा।[३] अखा तीर्थों और मन्दिरों में विश्वास नहीं करते थे, फिर भी प्रकृति उनकी भ्रमणशील रही है यह उनकी रचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है। उनकी रचनाओं में दो वर्णन स्पष्टतः बार बार आये हैं-एक नाटक और दूसरे जहाज के विषय में। उदाहरणार्थ : 'मालम' 'वावडो' 'लोढ' 'नौका ना मूषक', आदि। 'सपे' व 'वनो' 'बधाणो' आदि शब्द प्रयोगों को देखते हुए काठियावाड़, कराची, कोंकणपट्टी, कच्छ इत्यादि बन्दरगाहों तक अखा की जल-यात्रा का अनुमान किया जा सकता है। अखा रचित किसी भी ग्रन्थ में यद्यपि उनकी काशी यात्रा का वर्णन नहीं मिलता, फिरभी किंवदन्ती के आधार पर यह प्रसिद्ध है कि अखा गुरु की शोध में काशी गये थे और काफी समय तक रहे तथा गुरु ब्रह्मानंद के पास वेदान्त तथा अन्य आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया।[४]

<u>गुरु :</u> अखा के गुरु कौन थे ? गोकुलनाथजी के पश्चात्, उन्होंने किसी को गुरु बनाया या नहीं ? बनाया तो किसे, नहीं बनाया तो क्यों ? ये सभी प्रश्न गुजरात के

---

१. 'गुरु करवाने गोकुल गयो' अ.का. पृ.१६० ।

२. 'गुरु कर्या में गोकुलनाथ, नुगरा मन ने घाली नाथ,
मन मनावी सगुरा थयो, पण विचार नगुरा नो नगुरो रह्यो'।
—अ.छ. १६७

३. अ.छ. १६८ ।

४. अक्षयरस, कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, प्रका. म.स. विश्वविद्यालय, बड़ौदा ।

समीक्षकों के बीच बहुचर्चित रहे हैं । ये शंकाएँ तथ्य भ्रमित कर देने वाली इसलिए भी रही हैं कि अखा ने एक ओर गुरु की महिमा का अपूर्व गुणगान किया है, तो दूसरी ओर उन्होंने कहीं भी अपने व्यक्ति गुरु का नाम नहीं दिया है, अखा सम्प्रदाय के कट्टर विरोधी थे, किन्तु उनके बाद उनका भी सम्प्रदाय चला । जेबुसर के पास, कहानवा बंगला के श्री भगवानजी महाराज अपने को अखा की शिष्य परम्परा में सातवाँ मानते हैं । डॉ. योगीन्द्र त्रिपाठी ने अखाजी की गुरु प्रणालिका अपने अधिनिबन्ध[१] में प्रस्तुत की है, जिसे हमने द्वितीय परिच्छेद में साभार उधृत किया है । इस सम्बन्ध में श्री.उमाशंकर जोशी ने एक शंका ठीक ही उठायी है कि सामान्य रूप से अखा के बाद की तीन शताब्दियों में साधु-शिष्यों की सात से अधिक पीढ़ियाँ होनी चाहिए अत: शिष्य परम्परा का यह अक्षयवृक्ष संभवत: अपूर्ण है ।[२] 'अक्षय रस' की भूमिका में भी श्री.कुंवर चन्द्रप्रकाशजी ने इसी तरह की गुरु-प्रणालिका को उधृत किया है[३] जिसे उन्होंने सागर महाराज की डायरी से उधृत बताया है और इस आधार पर ब्रह्मानन्द को ही अखा का गुरु बताने का प्रयास किया है । जनश्रुति के आधार पर भी विद्वानों में एक पद अत्यन्त प्रसिद्ध है,[४] जिसके आधार पर अखा, गोपाल, नरहरि और बूटो का एक ही गुरु ब्रह्मानन्द को माना जाता रहा है, किन्तु गोपाल ने तो स्पष्ट रूप से अपने ग्रंथ 'गोपालगीता' में सोमराज को ही अपना गुरु स्वीकार किया है[५] अत: बाकी तीनों ज्ञानी कवियों

---

१. Kev. in Gujarat Poetry. - Dr.Y.G.Tripathi.
२. अखा ना छप्पा, पृ १६ ।
३. अक्षयरस, पृ.३२ ।
४. 'अखे कर्यो डखो, गोपाले करी घेश,
बूटे कर्यो कूटो, नरहर ने कहे शीरावा वेश ।' अ.प्र. पृ.१७ ।
५. 'सतगुरु स्वामी श्री सोमराज, कृपा थकी हवु ग्रंथ काज' — गोपालगीता ।

के लिए भी यह मत निरर्थक सिद्ध होता है । आलोचक-वर्ग अबतक अखा की रचनाओं में 'ब्रह्मानंद' शब्द को ढूँढ-ढूँढ कर ब्रह्मानन्द को ही अखा का गुरु सिद्ध करने का प्रयत्न करता रहा है । किन्तु अखा ने कहीं भी गुरु के रूप में ब्रह्मानन्द का उल्लेख नहीं किया है । उनकी रचनाओं में 'ब्रह्मानन्द' का अर्थ है 'ब्रह्म का आनन्द' : षष्ठी तत्पुरुष :, अत: यह व्यक्तिवाचक संज्ञा न होकर षष्ठी तत्पुरुष समास ही है । इस तरह तो अखा की रचनाओं में सच्चिदानंद:पद ३८ : सहजानन्द : पद १२२ : निरंजन : अखेगीता ४० : महानुभाव : पद १३६ : आदि अनेक ऐसे शब्द मिलते हैं जिन्हें हम अखा का गुरु समझ बैठने की शंका उठा सकते हैं ।

श्री गोकुलनाथजी से वैष्णवी-दीक्षा लेने के पश्चात् अखा को लगा कि किसी महान पुरुष को गुरु मान लेने पर ही आत्मज्ञान नहीं मिलता । वस्तुत: अखा यह सपने में भी नहीं भूल पाये हैं कि गुरु साधन है, साध्य नहीं । उन्होंने आत्मा को ही आत्मा का गुरु बताया है ।[1] वैष्णवभक्तों की तरह अखा भी बहुल काल तक रिरियाते रहे[2] किन्तु मिला कुछ भी नहीं । जिस दिन आत्म तत्त्व के सहारे परात्पर ब्रह्म की प्रतीति हुई, उसदिन अचानक उन्हें हरि के साक्षात् दर्शन हुए ।[3] अखा जैसा आत्म निरीक्षक अन्त में यह कहे बिना कैसे रह सकता था कि —

'अण महापुरुष ने चीधो आप,
जेहनो थाये न वेदे थाप,
अखे उरअंतर लीधो जाण,
त्यार पछी उघडी मुज वाण ।'

---

१. 'अखे उरअंतर लीधो जाण, त्यार पछी उघडी मुज वाण' अ.छ. १६८ ।
२. 'बहु काल हु रोतो रह्यो' अ.छ. १६८ ।
३. 'आवी अचानक हरि परगट थयो' अ.छ. १६८ ।

अर्थात् मात्र तीन महापुरुष : वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ, एवं गोकुलनाथजी : की शरण में बैठे रहना ही सच्ची साधना नहीं । इन तीनों महापुरुषों के साथ किसी चौथे की आवश्यकता थी और वह थी–आत्मा । यही था गुरुभक्ति और आत्मप्रतीति का रसायन । इस रसायन को पचाकर ही अखा की वाणी खिल उठी ।[1] श्री. न.दे.मेहता ने अपर, पर, परात्पर, परब्रह्म नाम की चार ब्रह्मवस्तु की भूमिकाएँ गिनाई है । ब्रह्म का बोध कराने वाली गुरु परम्परा को इस तरह वे क्रमशः गुरु, परमगुरु, परात्पर गुरु तथा परमेष्ठी गुरु कहते हैं । अतः चतुर्थ पद का लक्षणा द्वारा जो बोध कराये उसे सत्यगुरु कहा गया है । प्रत्यक्ष गुरु की परम्परा में तीन गुरु 'महापुरुष' हैं जिनका उल्लेख अखा ने 'प्रपंचअंग' में किया है । इनसे भी पर अर्थात् चौथा महापुरुष है स्वयं 'अन्तर्यामी आत्मदेव'। यही सच्चा गुरु गोविन्द है ।[2] इसीलिए अखा ने आत्मा को ही आत्मा का गुरु कहा है ।[3] उन्होंने गुरु तथा आत्मा का तादात्म्य साबित किया है । किसी व्यक्ति-गुरु की दखलबाजी उन्हें पसन्द नहीं । 'स्वयं' 'स्वे' 'जाणहारो' 'आप' 'स्वे' आदि संबोधन भी इसी बात के सूचक हैं । अखेगीता के प्रारम्भ में उन्होंने कहा भी है —

'गुरु गोविन्द, गोविन्द गुरु'

अखा निसन्देह स्वानुभवी हैं । उन्होंने स्वयं ही ब्रह्म का अनुभव किया था[4] इसलिए उनकी वाणी के मर्म को भी वही समझ सकता है जिसका गुरु उसकी आत्मा हो ।[5] आत्मा की उपासना करने वाले 'निगुरों' में अखा पहले और अकेले नहीं हैं, अपितु शुकदेव का आदर्श उन्होंने अपने समक्ष रखा है ।[6]

---

१. 'अखो एक अध्ययन' श्री. उमाशंकर जोशी पृ.२७ ।
२. अखाकृत काव्यो–भाग १, पृ.६२ ।
३. 'ते माटे गुरु ते ब्रह्म' अखेगीता १:८ ।
४. 'ब्रह्मानंद स्वामी अनुभव्यो रे, जग मास्यो छे ब्रह्माकारे'।–अ.वा. पृ.२६६
५. 'जे नर ने आत्मा गुरु थशे, कह्युं अखा नुं ते प्रीछशे ।'
६. 'बैकुंठते शुकदेव गुरु बिन आयो, फरी म मारे सोनारा'–संतप्रिया ८ ।

इस प्रकार अनुभव की बाती से आत्मा का दीप जलाने वाले अखा अद्वितीय सन्त थे, जो औरों की आँखों से नहीं बल्कि स्वानुभव के बल पर जीव और जगत के रहस्यों को परख सके थे।[1] फिरभी, अखा के गुरु के सम्बन्ध में हम तब तक अपना स्पष्ट मत नहीं दे सकते जब तक कि इस सम्बन्ध में कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध न हो।

<u>संत-समागम :</u> अखा ने सन्त-समागम का सम्पूर्ण लाभ उठाया था। वे बहुश्रुत एवं भ्रमणशील ज्ञानी कवि थे। सत्संग द्वारा उन्होंने योगवासिष्ठ, दत्तगीता, महाभारत, शान्तिपर्व, भगवद्गीता, भागवत, पंचदशी, आत्म-पुराण, बृहदारण्यक, छन्दोग्य उपनिषद, शांकरभाष्य, अध्यात्म रामायण, पुरुषसूक्त आदि ग्रंथों का ज्ञानार्जन किया था। श्री.न.दे.मेहता ने अखा की रचनाओं पर उपर्युक्त ग्रन्थों का प्रभाव बताते हुए प्रस्तुत तथ्य को स्पष्ट किया है।[2]

<u>अखाका समय :</u> अखा का जन्म एवं अवसान दोनों ही विवादास्पद है। कुछ विद्वान उनका जन्म संवत् १६४६ के आसपास मानते हैं और कुछ संवत् १६५३ के आसपास।[3] बृहद्काव्यदोहनकार ने अखा का जन्म संवत् १६७०–७५ के मध्य होने की संभावना प्रकट की है[4]; तथा मृत्यु-तिथि भी उनकी रचनाओं के आधार पर संवत् १७३०–३५ के बीच मानी है।[5] वस्तुतः अखा की जन्म-तिथि एवं निर्वाण-तिथि का निर्णय करने के लिये हमारे पास कोई ठोस आधार नहीं है।

---

१. 'शिष्य अखा का को नहीं, गुरु सारा संसार,
होते होते हो गयी, समजत पाया पार।' श्री. अ.सा. २८:३

२. अखाकृत काव्यो — भाग १, पृ.२२।

३. कवि चरित — भाग १-२, पृ.५४८।

४. बृहद काव्य दोहन — भाग ३, :भूमिका:

५. वही :भूमिका:

अन्तः साक्ष्य के आधार पर अखा के जीवन-काल का कुछ पता अवश्य लगता है। अखा के दो ग्रन्थों : 'गुरु-शिष्य-संवाद' एवं 'अखेगीता' : का रचनाकाल क्रमशः संवत् १७०१ तथा संवत् १७०५ मिलता है। गोकुलनाथजी के साक्षात्कार का उल्लेख भी अखा ने किया है।[1] गोकुलनाथजी का देहावसान संवत् १६९७ [redacted] माना जाता है। इन आधारों पर इतना तो निसंदेह कहा जा सकता है कि अखा का उपस्थित काल सत्रहवीं शती उत्तरार्ध से अठारहवीं शती पूर्वार्ध तक रहा होगा। इनका अक्षय अनुभव सांसारिक परिताप की भट्ठी में गल-गल कर सोना बना है और इतना अनुभव कोई भी व्यक्ति क्षणभर में नहीं पा लेता। अखा ने इस प्रकार का एक व्यंग्य भी किया है —

'तिलक करता त्रेपन वह्यां' [2]

'अखेगीता' उत्तरकाल की रचना है। इस आधार को लक्ष्य में रखते हुए, श्री.उमाशंकर जोशी ने अखा के जीवन-काल के विषय में कहा है कि — 'संवत् १६९७ पूर्व ही पचासेक वर्ष बीत गये हों यह भी संभव है। परन्तु इस संभावना को मानते हुए संवत् १७०५ के पश्चात् अखा के समय को बहुत अधिक खींचने [redacted] की संभावना कम रह पाती है। इस प्रकार घुमा फिराकर संवत् १६४७ से संवत् १७१० [redacted] अर्थात् सन् १५९१ से १६५६ ई. तक अखा का जीवन-काल निश्चित किया जा सकता है।[3]

---

१. 'गुरु कीधा में गोकुलनाथ' : अखाकृत छप्पा :
२. फुटकल अंक : अखाकृत छप्पा :
३. 'अखो एक अध्ययन' श्री.उमाशंकर जोशी। पृ.७१।

<u>कृतित्व :</u> अखा ने स्वयं को कवि न कहकर ज्ञानी कहना अधिक उचित समझा है ।[1] कवि-कर्म उनके लिये न श्रेय था न प्रेय ।[2] सच्चे अर्थों में वे अनुभव सिद्ध ज्ञानी-कवि थे, जिन्होंने बाह्य कृत्यों से विरक्त होकर अंतर-प्रतीति को ही कवि मर्म माना, जिन्होंने जूठन को होठों से लगाना अपनी साधना का अपमान समझा और चबाये हुए का चर्वण करना अपनी काव्य सामग्री की हीनता । ज्ञानी की वाणी तो अमृत का स्रोत है । पानी तथा अमृत में यही एक अन्तर है ।[3] भुक्तभोगी अखा ने जो कुछ भी लिखा वह अमृत की धार बन गया, जो कुछ भी कहा हथोड़े की चोट पर कहा । वैष्णव-कवियों की तरह संप्रदाय के गीत लिख-लिख कर अथवा गुरु की झूठी प्रशस्ति गा-गा कर उन्होंने अपनी आत्मा को बेच नहीं दिया । अखा की वाणी वैष्णव-कवियों पर प्रहार करती हुई स्पष्ट प्रतीत होती है । अपने युग के सहगायकों से अलग होकर अखा ने शांकरवेदान्त से अनुप्रेरित ज्ञानवाद की वीणा द्वारा जीवन के कटु एवं गहन अनुभवों से प्रसूत जिस भाव लहरी का उद्घोष किया है, वस्तुतः वही उन्हें युगदृष्टा एवं युग सृष्टा के पद पर ला बिठाती है । उनकी रचनाओं में जहाँ एक ओर कर्मकांड एवं रूढ़ियों से आबद्ध धर्म एवं समाज का खोखलापन चित्रित है, वहाँ दूसरी ओर इस प्रकार भटकने वाले मुमुक्षुओं को सत्य के मार्ग पर खींच लेने वाली सशक्त ज्ञानवाद की डोर है । वस्तुतः अखा की वाणी का प्रसार पार्थिव न होकर ऊर्ध्वगामी है ।

अखा ने हिन्दी एवं गुजराती दोनों भाषाओं में अधिकार-पूर्वक काव्य रचना की है । उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के नाम

---

१. 'ज्ञानी ने कवि मां न गणीश, किरण सूर्य नां कैम वरणीश' ।
२. 'अखो शुं कविपणुं करे, जो वात कशी ना पहोंचे शरे' ।
३. ज्ञानी अंग । : अखाकृत छप्पा :

इस प्रकार गिनाये जा सकते हैं : —

गुजराती ग्रंथ :

:१: अखेगीता	:७: अनुभवबिन्दु
:२: पंचीकरण	:८: गुरु-शिष्य संवाद
:३: चित्त-विचार संवाद	:९: कैवल्यगीता
:४: छप्पा	:१०:सोरठा
:५: कक्का	:११:बारहमासा
:६: सातवार	:१२:[redacted] अवस्थानिरूपण ।

हिन्दी ग्रंथ :

:१: ब्रह्मलीला	:६: एकलज रमैनी
:२: संतप्रिया	:७: साखियाँ
:३: जकडी	:८: भजन
:४: झूलणा	:९: पद
:५: कुंडलियाँ	:१०:धमार ।

रचनाक्रम की दृष्टि से श्री. केशवलाल ह.ध्रुव ने अखा द्वारा रचित कृतियों का क्रम इस प्रकार रखा है — पंचीकरण, चित्तविचार संवाद, तत्पश्चात् गुरु-शिष्य संवाद, अनुभव-बिन्दु और अखेगीता । हिन्दी काव्य में संतप्रिया पहले एवं ब्रह्मलीला इसके बाद की रचना है । छप्पा तथा पदों की रचना उत्तरावस्था में हुई ।[1] श्री.उमाशंकर जोशी भी इस मत से पूर्णतः सहमत हैं ।[2] अखा के गुजराती ग्रन्थों में अखे गीता और अनुभवबिन्दु जिस प्रकार सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ मानी जाती हैं, उसी प्रकार हिन्दी में उनकी संतप्रिया एवं

१. 'अखो : एक अध्ययन' : प्रास्ताविक पृ.१० ।
२. वही पृ ६७ ।

`ब्रह्मलीला` का प्रमुख स्थान है। `अनुभवबिन्दु` और `अखेगीता` की तरह `संतप्रिया` और `ब्रह्मलीला` कड़वा-बद्ध एवं छन्दबद्ध काव्य कृतियाँ हैं, जिनमें शैली की दृष्टि से अखा के ब्रह्मज्ञान की एक रस-धार है, निरन्तर बहने वाला एक प्रवाह है। ऐसा प्रवाह, जो संभवतः हमें कबीर, दादू अथवा सुन्दरदास जैसे सर्वप्रसिद्ध निर्गुणियों में भी नहीं मिलता। अखा की विचार-सरणि में कहीं टूटन नहीं, कहीं बिखराव नहीं और ब्रह्मानुभव की इस प्रकार अभिव्यक्ति की सर्गबद्धता हिन्दी सन्त साहित्य को उनकी अपूर्व देन है।

`अखेगीता` की भाँति अखा ने `संतप्रिया` एवं `ब्रह्मलीला` की रचना तिथि नहीं दी है यद्यपि भाषा एवं रचना कौशल की दृष्टि से हम `संतप्रिया को प्रथम तथा `ब्रह्मलीला` को इसके बाद की रचना मान सकते हैं। श्री उमाशंकर जोशी ने `ब्रह्मलीला` को `चित्तविचार संवाद` एवं अनुभव बिन्दु के मध्य की रचना माना है तथा `संतप्रिया` को `चित्तविचार` से पहले की रचना माना है। पूर्व रचना होने के कारण अनेक छप्पों का प्रभाव भी उसमें दीख पड़ता है।[१] इस प्रकार `संतप्रिया` अखा की प्रथम हिन्दी रचना है। यह एक बृहद रचना है जो सम्पूर्णतः कदाचित पहली बार `अक्षय रस` में प्रकाशित की गयी है, इससे पूर्व के गुजराती संग्रहों में `संतप्रिया` का केवल `सवाँगी प्रकरण` ही उपलब्ध होता है। सवाँगी प्रकरण में कुल १०६ छन्द हैं जबकि बाद में जोड़े गये `अन्वय-व्यतिरेक` प्रकरण के अन्तर्गत २६ छन्दों को समाविष्ट किया गया है।[२] `संतप्रिया` की मूल हस्त प्रतियाँ बम्बई की फार्बस लायब्रेरी तथा बड़ौदा विश्व विद्यालय के गुजराती विभाग के विद्वान प्राध्यापक डॉ. योगीन्द्र त्रिपाठी के पास सुरक्षित हैं। अखा ने इस ग्रन्थ का प्रारम्भ गुरु-महिमा से

---

१. `अखो एक अध्ययन` : कृतियो अने तेमनो क्रम :
२. `अक्षयरस` पृ. १३९-१६६।

ही किया है :—

> 'गुरु गोविन्द गोविन्द सो गुरु,
> गुरु गोविन्द गनति नहिं न्यारा'।[१]

'संतप्रिया' में कवि ने जप-तप, दान-दक्षिणा, वेद-ज्ञान, आदि की व्यर्थता सिद्ध करते हुए अज्ञान के घटाटोप से परावृत्त धन, शरीर एवं शृंगार-लोलुप मनुष्य को ज्ञान की ऊँचाई पर ले जाकर नारायण को पहचानने का उपदेश दिया है। उसने सत्संग का त्याग करने वाले को कुमार्गी निंदकों को कौवों और गधों की संज्ञा से अभिहित किया है।[२] कवि की स्वतंत्र विचार सरणि ने तिलक-छापा, कंठी-माला, आपा-थापा आदि बाह्याचारों तथा रूढ़ियों का घोर विरोध करते हुए कठोर व्यंग्य किया है :—

> 'माला न फेरूँ टीका न बनाऊँ,
> शरणे न जाऊँ मैं कोऊ किसीका।
> आपा न मेटूँ थापा न थापूँ,
> मैं मदमाता हूँ मेरी खुशी का'।[३]

कवि ने अन्त में अन्तर के नयनों से राम को परखने की बात कही है। जो पुरुष आहार, निद्रा, भय एवं मैथुन आदि से परे सत्य के माध्यम से आत्म प्रतीति की बात नहीं सोचता वह पशु से भी बदतर है।:—

> 'आहार निद्रा भय मैथुन मायनी, छोना खेलावन नाहीं लज्यारे,
> पुरुष पशु से बीच नाहीं रंच, जोपै राम पहेचान्यो न न्यारे,।
> कैहेत अखो चित के नैन देखो, जो सत्य माने रे राम रच्या रे।[४]

---

१. 'संतप्रिया'— ८ ।
२. 'संतप्रिया'— १०० ।
३. 'संतप्रिया'— ८७ ।
४. 'संतप्रिया'— १३३ ।

'ब्रह्मलीला' ४८ छन्दों की एक छोटी सी रचना है। कवि ने इसके अन्तर्गत सांख्य-दर्शन की व्याख्या करते हुए निरंजन-निराकार ब्रह्म से त्रिगुणात्मिका माया और पंचभूतों की उत्पत्ति तथा ब्रह्म के रहस्य का निरूपण किया है। भाषा शैली की दृष्टि से कवि की यह रचना अत्यन्त प्रौढ है, किन्तु 'संतप्रिया' की सी सरसता का इसमें किंचित अभाव है। यद्यपि कवि की रचना इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई है कि अखा के परवर्ती सन्तों में प्रीतम आदि ने भी इसी नाम की अन्य उत्कृष्ट कोटि की रचनाएँ की हैं। स्वयं अखाने प्रस्तुत कृति की प्रशंसा में यह कहा है :—

'कहे अखा यह ब्रह्मलीला, बड़भागी जन गाय जो,
हरि हीरा अपने हृदय में, अनायास सो पाय जो ।।'

अखा के दार्शनिक विचारों की मंजूषा है— 'अखेगीता' जिसमें भारतीय षड्दर्शनों के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। 'अखेगीता' की प्राचीन प्रतियों में गुजराती कड़वों के बीच-बीच कुछ हिन्दी पद भी मिलते हैं,[१] जिन्हें बाद के प्रकाशनों में अलग कर दिया गया है तथा उन्हें अखा के अन्य पदों के साथ जोड़ दिया गया है। हमारी दृष्टि से यह ठीक नहीं, क्योंकि अखा ने गुजराती पदों के बीच-बीच हिन्दी पदों की जो बानगी प्रस्तुत की है, उसका विशेष महत्त्व है। अखा को यदि ऐसा करना होता तो वे स्वयं ही इन पदों को अन्य हिन्दी पदों के साथ जोड़ देते। 'अखेगीता' वस्तुतः ज्ञानपूर्ण ग्रन्थ है अतः ज्ञान की रुक्षता को मिटाने के लिए वैविध्य का ग्रहण तथा हिन्दी की रस लहरी का आलोड़न उस युग की विशेष माँग थी जो न मात्र हमें अखा की कृतियों में ही दीख पड़ती है अपितु समस्त मध्यकालीन गुजरात एवं

१. 'अखेगीता' पद ५, ७, ६ आदि : देखिए— 'अखा नी वाणी' प्र. सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद, प्रथम आवृत्ति।

महाराष्ट्र के प्राय: सभी सन्त कवियों में परिलक्षित होती है ।

अद्वैत सिद्धान्तों की चर्चा जहाँ ब्रह्मलीला एवं 'सन्तप्रिया' में हुई है वहाँ उनके १०६ 'फूलणा' पदों[१] में 'खालिक' के खेल की चर्चा है। इन फूलणा पदों की भाषा में हिन्दी के देशज तथा तद्भव शब्दों की अपेक्षा अनुपात में फारसी एवं अरबी शब्दों की बहुलता है । आठ आठ पंक्तियों के इन फूलणा पदों में किसी एक विषय का सुसम्बद्ध निरूपण नहीं है । अद्वैत साधना को सूफी परिभाषा में प्रकट करने का प्रयत्न यहाँ परिलक्षित होता है । वेदान्त एवं सूफी दर्शन के समन्वय की परम्परा में निसन्देह यह एक महत्वपूर्ण कड़ी है । 'ख्याली' के इस 'खेल' में 'ऐन' तथा 'गैन' की विशद चर्चा की गई है ।[२] 'गैन तो गैर है, इस उपाधि से मुक्त होकर 'ऐन' में लय होने की साधना ही विशिष्ट सोपान है । इस साधना के लिए पूर्व अथवा पश्चिम में नमन करने की आवश्यकता नहीं ।[३] जब अखा को 'फांकते में ही फाबा-फाब हो गई' तो 'हक' और 'गैर' का भेद कहनेभर के लिए रह गया । जिसे पारस का पैसा मिला है, वह तांबे का मोल क्यों करेगा ? अखा ने इन फूलणा पदों में प्रेम की भी विशद चर्चा की है । शरियत, तरीकत, हकीकत और मारिफत को लांघकर 'वासिले हक' की तमन्ना अखा ने अपने प्रेम-पंथ में सूचित की है । ये चारों मंजिलें अखा की नहीं हैं । सूफी-प्रेम की इन चारों अवस्थाओं का चित्रण फूलणा पदों में जगह-जगह मिलता है । अखा के मन 'शरियत' का बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं है । इसका सम्बन्ध हीरा-मानिक की तरह होता है । हकीकत हासिल होने पर जीवन कुछ पार पा

---

१. 'अक्षयरस' पृ.५५—८४ ।
२. 'एन सु अवला फरता है, वहाँ अखा है जीवन मारी' फूलणा ८० ।।

oo oo oo

'आखर ऐन तबै हुए अखा, जब नफी का करार दिया'। फूलणा ७६ ।।
३. 'ऐन दी अखल आपणी जी, अखा उघड़ी भाग्य रेखा'। फूलणा ६ ।।

सकता है । मत तथा पन्थों की आपसी खींचा-तानी देखकर अखा ने हमेशा शिकायत की है ।[१] संक्षेप में अखा ने कहा है कि प्रेम का नाग जब काट लेता है तो संसार के समस्त कटु अनुभव भी मीठे हो जाते हैं ।[२] बस, 'नूर' के साथ 'निकाह' करने की आवश्यकता है । इस मार्ग में पढ़ाई-लिखाई कुछ काम आनेवाली नहीं है । जिसे सूफ नहीं, पिया उसे से दूर है और जिसने उसे 'दिल के दीदे' में देखा है, वह निहाल हो गया ।[३]

अखाजी की ३६ जकड़ियाँ अब तक प्रकाश में आयी हैं ।[४] इनमें उनकी तन्मयता एवं रहस्यात्मकता का स्पष्ट उन्मेष है । मिलन की भावना से ओतप्रोत इन जकड़ियों में अखा की आत्मा कभी युग-युग से तपते हुए चाँद को देखती है ।[५] तो कभी आह्वान का गीत भी गा उठती है—'भला बिराज्या साथी मेरा ।' कभी साजन के 'सहेजे-सहेजे' आने की अनुभूति होती है तो कभी 'पचरंगी चोला पहन' साइयाँ के साथ खेलने को उनकी आत्मा रूपी सुहागिन मचल उठती है ।[६] स्वयं को 'कामिनी' और प्रिय को 'कामी' के रूप में देखकर अपने 'नैन-सलूणा' साथी से 'हार-जीत' की बाजी कर बैठती है '।[७] यह साथी 'जूना' है अर्थात् यह जनम-जनम का साथी है और धूर्त भी है । 'धूर्त' होते हुए भी यह 'उसका' है किसी

---

१. 'मत मजहब को खैंचला है, और ढूँढता नहीं किरतार कोई,
हो खुदा, किस्मात होवे नहीं, आवरो, जावरो वैर दोई ।।'

२. फूलणा १८० ।

३. फूलणा १०३ ।

४. 'अद्ययरस' पृ. १ से ३६ ।

५. अखाजी की जकड़ी ३४ ।

६. वही १३ ।

७. वही ८ ।

गैर का नहीं । इसीलिए उसे नाज़ है । धूर्त है तो क्या हुआ ? उसके आते ही सारा [redacted] अंधकार [redacted] विनष्ट हो गया । उसने जैसे ही प्रेम-पियाला पिलाया और नव खण्डों में उजाला हो गया ।[1] अनुभूति की तन्मयता अखाकृत जकड़ियों की सबसे बड़ी विशेषता है ।

इसी प्रकार अखाकृत २५ हिन्दी कुंडलियों तथा ३४ हिन्दी भजनों का संग्रह 'अक्षयरस'[2] में मिलता है जो 'अप्रसिद्ध-अक्षयवाणी'[3] का ही एक मात्र संकलन है । काव्य-सौंदर्य तथा भाषा गठन की दृष्टि से अखाजी की कुंडलियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं ।

'श्री एक लक्ष रमणी' अखाजी की अत्यन्त लघु रचना है, जिसमें 'पूर्ण ब्रह्म' की महिमा का गान है ।[4] अखाजी की विपुल साखियाँ तथा पद उनके बृहद् ज्ञान एवं अनुभव के श्रेष्ठ उदाहरण हैं । वस्तुत: स्वानुभव की जो झलक अखाजी ने गुजराती छप्पों में प्रस्तुत की है, ठीक उसी प्रकार की अनुभूति के दर्शन हमें उनकी हिन्दी साखियों और पदों में होते हैं । 'अंगों' द्वारा जिस प्रकार उन्होंने छप्पों का वर्गीकरण किया है, 'साखियों' का वर्गीकरण भी उन्होंने विविध प्रकार के 'अंगों' द्वारा किया है । अखा के पद उनके अनुभव एवं आत्म ज्ञान के निरन्तर महकते हुए 'कमल-पुष्प' हैं । अन्तर सिर्फ इतना है कि रूढ़ियों एवं बाह्याचारों पर जो फटकार अखा के छप्पों में बरसती है वह उनके पदों में नहीं । उनमें गंध है, ऐसी गंध जो हृदय की गहराई में उतरकर अनायास ही भक्ति तथा वैराग्य की भावना को जगा दे । वस्तुत: अखा की लोकप्रियता उनके

---

१. अखाजी की जकड़ी ६ ।
२. आ. कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह द्वारा संपादित म.स.वि.वि. बड़ौदा ।
३. सागर महाराज द्वारा संपादित ग्रन्थ, गु.व.सो., अहमदाबाद ।
४. 'जगत कहो । जगदीश कहो । माया कहो कोई काल,
पूरण ब्रह्म गाइये हो । द्वैत नहीं कोई काल । 'अक्षयरस पृ.१ ।

छप्पो एवं पदों के कारण ही है । मध्यकालीन गुजराती साहित्य में उनका प्रमुख स्थान इन दो विशिष्ट काव्य-स्वरूपों के कारण भी है । डॉ. मुन्शी ने इनकी वाणी को युग की यथार्थ अभिव्यक्ति कहा है ।[1] [redacted] इन मुक्तक रचनाओं में ही वस्तुतः अखा का कवि-हृदय बोल उठा है । कवि की संवेदनशील अभिव्यक्ति में कला एवं ज्ञान का सुभग संयोग है :—

अकल कला खेलत नर ज्ञानी
जैसे हि नाव हिरे फिरे दसों दिश,
ध्रुव तारे पर रहत निशानी ।।ध्रुव ।।
चलन वलन अवनी पर वाकी,
मन की सुरत अकाश ठहरानी ।
तत्त्व समास भयो है [redacted] स्वतंतर,
जैसे हिम होत है पानी ।।१।।
छुपी आदि अनंत न पायो,
आइन सकत जहाँ मन बानी ।
ता घर स्थिती भई है जिनकी
कही न जात ऐसी अकथ कहानी ।।२।।
अजब खेल अद्भुत अनुपम है,
जाकू है पहचान पुरानी ।
गगनहि गैब भया नर बोले,
एहि 'अखा' जानत कोई ज्ञानी ।।३।।[2]

---

१. "Akha's place in literature depends upon his chhapās and pads in which following a line of early writer like Mandan and other poets of what are styled jnani poets, he expressed the dominent note of the age in biting verse."
-Dr. K.M.Munshi, Gujarat & Its Literature P.231.

२. आश्रम भजनावली, नवजीवन, पृ. [redacted] ११६, पद ७७ ।

अखा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्यक विहंगावलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुजरात के सन्तों में अखा का वही स्थान है जो उत्तरभारत की सन्त-परम्परा में कबीर का है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए डॉ. अंबाशंकर नागर ने अखा को गुजरात का कबीर कहा है।[1] जिस प्रकार कबीर के परवर्ती सन्तों ने किंचित परिवर्तन के साथ उनकी वाणी की उद्धरणी की है उसी प्रकार अखा के परवर्ती ज्ञानमार्गी सन्तों ने उनकी वाणी का अनुसरण किया है।[2] अखेवाणी : अकथवाणी : के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुजराती सन्तों में तो वे सर्वोत्कृष्ट हैं ही, हिन्दी सन्त-साहित्य में भी वे सम्माननीय स्थान प्राप्त करने के अधिकारी हैं।

:८: नरहरि : : उप.काल सं.१६७२-१६९६ :

नरहरि अखा के समकालीन थे और उन्हीं की कक्षा के ज्ञानी कवि थे। डॉ.सुरेश जोशी ने अपने शोध-प्रबन्ध में नरहरि को बावला का कडवा पाटीदार बताया है।[3] प्रसिद्ध जनश्रुति के आधार पर इनके गुरु का नाम ब्रह्मानंद बताया जाता है किन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

---

१. 'गुजरात के हिन्दी गौरव-ग्रंथ' पृ.८।

२. 'Upto the biginning of the modern period, many poets echoed the note of Akha'.
-- Gujarat & Its Literature. Page 236.

३. 'A critical Edition of Narhari's Jnangita'
- Dr. Suresh H.Joshi, M.S.University, Baroda.

इनकी प्रसिद्ध गुजराती रचनाएँ इस प्रकार हैं :—

:१:	ज्ञानगीता	:२:	गोपी—उद्धव संवाद ।
:३:	हरिलीलामृत	:४:	भक्तिमंजरी
:५:	प्रबोध मंजरी	:६:	कक्का
:७:	मास	:८:	संतना लक्षण ।

इन सभी रचनाओं का एक ही विषय है भक्ति, वैराग्य एवं ज्ञान का प्रतिपादन तथा गुरु एवं गोविन्द के महात्म्य का गान । नरहरि की भाषा अखा की तरह कूट न होकर प्रसादमय एवं सरल है । इनकी हिन्दी रचनाएँ विपुल प्रमाण में अभी तक [redacted] उपलब्ध नहीं सकी हैं, किन्तु प्राचीन ग्रन्थ भंडारों में इनके द्वारा रचित अनेक हिन्दी पदों के मिलने की पूर्ण सम्भावना है । बड़ौदा विश्व विद्यालय के प्राच्य विद्या—मन्दिर की हस्तप्रति : वि.सं.५४६७ : में नरहरि के कुछ हिन्दी कीर्तन मिलते हैं । हस्त प्रति [redacted] खण्डित होने के कारण अधिकांश पद नष्ट हो चुके हैं । इसमें हिन्दी के कुल [redacted] दो पद उपलब्ध होते हैं जिनमें से एक तो अपूर्ण प्रतीत होता है । इन पदों की भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है । नरहरि ने शब्दों को खूब तोड़ा—मरोड़ा भी है । इस दृष्टि से इनका एक पद देखिए :—

"हरि गुरु संत इहों औ कहो रे ।
ईहों कहि वेद पुराण ।।
जीवत मरत गजब होय तब++
पापि पद नीरवाण ।।हरि।।
और धंध सब छाडि दिरे ।
एक तूहिं तूहिं लय लाय ।।
कहि नरहरि ए अनूभव बरो ।
ताथि अभय परम पद [redacted] पाय ।।"[१]

१. हस्तप्रति, वि. सं. ५४६७ प्राप्त प्राच्य विद्या मन्दिर, बड़ौदा ।

:६: गोपालदास : उप.काल सं.१७०५ :

ये अखा के समकालीन ज्ञानी-कवि थे। अखाकृत 'अखेगीता' का रचना-काल संवत् १७०५ है, ठीक यही रचना-काल 'गोपालदास' कृत 'गोपालगीता' का भी है।[१] श्री.के.का.शास्त्री ने इन दोनों ग्रन्थों के बीच मात्र डेढ़ मास का अन्तर बताया है तथा 'अखेगीता' को 'गोपालगीता' से पहले की रचना माना है।[२] कवि ने 'गोपालगीता' का नाम 'ज्ञान-प्रकाश' दिया है, किन्तु यह ग्रन्थ 'गोपालगीता' के नाम से ही प्रसिद्ध है। संभव है 'अखेगीता' की देखादेखी 'गोपालगीता' नाम पड़ गया हो। इस ग्रन्थ में कवि ने अपना जो सामान्य परिचय दिया है, वह इस प्रकार है :—

:१: गोपालदास की जन्मभूमि नंदावती : नांदोद : थी।
:२: जाति से वह मोढ़ अडालजा वैश्य थे।
:३: पिता का नाम खीमजी एवं गुरु का नाम सोमराज था।
:४: अहमदाबाद में फरमानवाड़ी नामक स्थान में रहकर 'ज्ञानप्रकाश' अर्थात् 'गोपालगीता' की रचना की।

स्व.दी.ब. नर्मदाशंकर मेहता तथा डॉ.योगीन्द्र त्रिपाठी ने प्रचलित दोहे के आधार पर अखा, गोपाल, बूटियो तथा नरहरि को एक ही गुरु ब्रह्मानन्द का शिष्य बताया है किन्तु जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि गोपाल ने स्पष्ट रूप से अपने गुरु सोमराज का उल्लेख किया है, यही उसका राजहंस, चैतन्यदेव अथवा ब्रह्मचैतन्य है, अन्य कोई ब्रह्मानंद नहीं। अतः गोपालदास के गुरु के विषय में यहाँ विशेष कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। 'कविचरित' में इसकी विशद व्याख्या की गयी है।[३] गोपाल को सूरत का

---

१. 'गुरु प्रतापे पोहोंची आश, ग्रन्थ हवो त्यारे ज्ञानप्रकाश,
 संवत् १७ पाँच सार, मास वैसाख अष्टमी भोमवार।'
२. 'कवि चरित' भाग १—२, पृ.५५५।
३. श्री. के.का.शास्त्री क.च. भाग १—२, पृ.५३६।

भी बताया गया है[1]; किन्तु पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इस प्रकार का कथन भ्रम पूर्ण ही है। अहमदाबाद में आने के पश्चात् गोपाल अखा से मिले या नहीं इस विषय में 'गोपालगीता' तथा 'अखेगीता' दोनों ही मौन हैं, जबकि दोनों का रचना काल एक ही है। गोपालगीता गुजराती में लिखी हुई रचना है जिसका निरूपण कविने गुरु-शिष्य संवाद के रूप में किया है। गोपालगीता के आधार पर कवि के विषय में श्री.के.का.शास्त्री ने कहा है कि— 'वेदान्त को पचाकर मातृभाषा में अभिव्यक्ति का यह दुरूह कार्य अखा के समान कौशल एवं कवित्वपूर्ण न होने पर भी गोपाल ने सफलतापूर्वक निभाया है।[2] गोपाल की लिखी हुई हिन्दी रचनाएँ विरल ही हैं। इनका एक हिन्दी पद यहाँ दृष्टव्य है :—

'मैं मतवाला राम का,
अजर प्याला प्रेम का मुज असर आया रे,
मस्त भया गोपालिया सोमराज पीवाड्या रे।'[3]

भाषा की दृष्टि से गोपाल के पद अत्यन्त सरल हैं। इनकी भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है। इस कविने रासलीला, कृष्णभक्ति एवं सत्संग महिमा के पदों की रचना 'दास गोपाल' के नाम से की है। बृहद काव्य दोहन भाग ५ में ११ पद तथा गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी की हस्तप्रति : विवरण सं.११६: में १५ पद संग्रहीत हैं।

---

१. बृ.का.दो. भाग ३ पृ.५१६ तथा गु.सा.मा. स्तंभो, पृ.११४।
२. कविचरित भाग १—२। पृ.५४०।
३. गु.व.सो. हस्तप्रति, ११६, पद ११, पृ.६५।

:१०: लालदास : : उप.काल १८ वीं शती पूर्वार्ध पूर्वार्ध :

ये वीरपुर के छीपा भावसार थे। अखा को इन्होंने अपना गुरु कहा है।[१] अखा की भाँति इनकी वाणी में भी गुरु-गोविन्द की एकता, अनन्य भक्ति तथा स्वानुभवपूर्ण ज्ञान का उद्घोष है। इस आधार पर इनके द्वारा रचित ज्ञान-रैणी, पद तथा साखियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनकी भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है। भाषा की दृष्टि से इनका एक पद दृष्टव्य है —

'मन का महेरम मिलिया,
कही रे दिल की बात।
प्रीते प्रभुजी म्हारी अंग रे बसिया,
व्हाले न जोई रे जात।...१.
अनंत जनम को रोगज मिटियो,
सहजे मई रे समाध।...२.
अष्ट-कमल पर महारस वरसे,
चरखा जाणे स्वाद।...३.
कहे लालदास त्हारे कृपा रे कीधी,
वास दियो है अगाध।[२]...४.

१. 'अखा गुरु चरण प्रसाद थी,
एम कहे सेवक लालदास जी।'
संतोनी-वाणी पृ.१।

२. संतोनी-वाणी पृ.२१, पद २०।

:११: प्राणनाथ : संवत् १६७५ से १७५१:।

हिन्दी सेवी संसार स्वामी प्राणनाथ और उनकी वाणी से अपरिचित नहीं । भाषा, संस्कृति तथा धर्म के क्षेत्र में स्वामी प्राणनाथ अपने समय के मौलिक विचारक थे । धर्म एवं संस्कृति के जिन आदर्शों का अनुसरण युग-पुरुष महात्मा गांधी ने किया उन सभी की प्रस्थापना, स्वामी प्राणनाथ प्राय: ३०० वर्ष पूर्व कर चुके थे । मध्ययुग की संकुचित दृष्टि भले ही उनका सच्चा मुल्यांकन न कर सकी किन्तु भविष्य की पीढ़ियाँ उनके व्यापक प्रभाव से बच नहीं सकीं ।

डॉ. बडथ्वाल ने अपने शोध ग्रन्थ में इनका संक्षिप्त परिचय देकर संभवत: सर्व प्रथम समीक्षकों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित किया था ।[1] डॉ. बडथ्वाल ने इन्हें जाति का क्षत्रिय तथा काठियावाड़ निवासी बताया है । उन्होंने इनका जन्म-संवत् १६७५ स्वीकार किया है ।[2] साम्प्रदायिक ग्रन्थों एवं गुजराती के विवेचन ग्रन्थों में इनका नाम मेहराज, श्रीजी, प्राणनाथ आदि मिलता है । `निजानन्द-चरितामृत' के आधार पर इनका जन्म नवतनपुरी : जामनगर : में संवत् १६७५ आश्विन मास की : गुजराती भाद्रपद : कृष्ण चतुर्दशी रविवार के दिन हुआ था ।[3] इनकी माता का नाम धनबाई तथा पिता का नाम केशव ठाकुर था ।[4] इनके पिता केशवरायजी जामनगर के प्रतिष्ठित दिवान थे । उनके पाँच पुत्रों में प्राणनाथ चतुर्थ थे । बारह वर्ष की अवस्था में अर्थात् संवत् १६८७ के आसपास स्वामी श्री देवचन्द्रजी ने इन्हें तारतम्य की दीक्षा दी ।

---

१. हि.का.नि.स., पृ. १३३-३४ ।
२. वही पृ. १३३ ।
३. निजानन्द-चरितामृत पृ.२६६ ।
४. `करुणावपु केशव सदन, धर्यो महानर वेश ।'
—ब्रजभूषणकृत वृतान्त मुक्तावली, पृ.३२ ।

डॉ. बडथ्वाल ने प्राणनाथ को विवाहित मानते हुए यह कहा है कि उनकी पत्नी भी कविता करती थीं, 'पदावली' इस दंपत्ति की संयुक्त रचना है ।[1] डॉक्टर साहब ने प्राणनाथ की पत्नी का नाम नहीं दिया है, किन्तु बाद के अधिकांश संशोधकों ने इस आधार को लक्ष्य रखते हुए कि प्राणनाथ-इन्द्रावती की संयुक्त एवं विभिन्न रचनाएँ मिलती हैं, इन्द्रावती को ही उनकी पत्नी मान लेने का भ्रम पैदा कर दिया है । डॉ. सावित्री सिन्हा ने तो नि:संकोच भाव से इस मत की पुष्टि करते हुए कहा है कि 'इन्द्रावती श्री प्राणनाथजी की परिणीता थीं जिन्होंने अपने पति के स्वर में स्वर मिलाकर उन्हें अपने मत के प्रचार में पूर्ण सहयोग दिया ।[2] गुजराती में इन्द्रावती नाम से रचित 'विरह बारमासी'[3] 'ऋतु वर्णन'[4] तथा 'षट्ऋतु वर्णन'[5] आदि विभिन्न रचनाएँ मिलती हैं जिनमें 'मारा हो प्राणनाथ', 'अर्द्धांगना तमारी प्राणनाथ' जैसे प्रयोगों को देखते हुए इन्हें प्राणनाथ की पत्नी मान बैठने का भ्रम अवश्य होता है, किन्तु उन्हीं ग्रंथों में 'प्राणनाथ' का प्रयोग 'प्राणों-नाथ' : प्राणों का स्वामी : के अर्थ में भी हुआ है ।[6] ऐसे प्रयोगों से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'प्राणनाथ' का प्रयोग व्यक्ति विशेष के अर्थ में न होकर षष्ठी तत्पुरुष के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है । अत: यह मान बैठना भ्रमपूर्ण है कि इन्द्रावती प्राणनाथ की पत्नी थीं ।

---

१. [illegible] हि.का.नि.स., पृ. [illegible] १३३ ।
२. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ.८३ ।
३. प्रा.का. सुधा, भाग ३, पृ.२४१ ।
४. वही, भाग ३ ।
५. वही, भाग ४ । पृ.२५७ ।
६. वही, भाग ४ । पृ.२८३ ।

इस भ्रम को सर्वप्रथम दूर करने का प्रयत्न काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका : संवत् २००८ : में किया गया है ।[1] साम्प्रदायिक ग्रंथों के आधार पर प्राणनाथजी की दो पत्नियाँ थीं — फूलबाई और तेजकुंवरि । इन्द्रावती तथा महामति के नाम से जो रचनाएँ मिलती हैं वे प्राणनाथ की ही हैं इस प्रकार की स्पष्टता डॉ. गोवर्धन शर्मा ने भी अपने लेख विशेष में की है । उनका मानना है कि प्राणनाथ की प्रारम्भिक रचनाएँ निज के नाम से, मध्यकालीन रचनाएँ 'इन्द्रावती' के नाम से और उत्तर-कालीन रचनाएँ 'महामती' के नाम से लिखी गयी हैं । अतः धामी सम्प्रदाय में 'इन्द्रावती' और 'महामती' की जो छाप मिलती है, वह स्वयं प्राणनाथ की ही है और कोई नहीं । यह बात धामी-सम्प्रदाय की पृष्ठभूमि का अध्ययन करने पर स्वतः स्पष्ट हो जाती है । तत्सम्बन्धित ग्रन्थों के आधार पर स्वरूप-दर्शन की चर्चा का सार इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :—

:१: श्रीकृष्णजी ...... श्री राजजी
:२: श्री देवचन्द्र ...... श्यामारूप श्रीश्यामजी
:३: श्री प्राणनाथ ...... इन्द्रावती की वासना तथा साक्षात् तारतम्य-स्वरूप श्रीजी ।
:४: श्री मुकुन्ददास...... ब्रह्मधाम की शक्तिस्वरूप श्री नवरंगबाईजी ।[2]

साम्प्रदायिक ग्रंथों में इन्हें साधना की विभिन्न अवस्थाएँ कहा गया है । इस दृष्टि से 'इन्द्रावती' ब्रह्म की

---

१. प्राचीन हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज — नागरी प्रचारिणी पत्रिका संवत् २००८ वर्ष ५६, पृ. २१ ।

२. 'सुन्दर सागर' : भूमिका : पृ. २५—२६ ।

वासना ही है — 'श्री पूर्णब्रह्म के जिस आवेश स्वरूप तारतम्य को लेकर गुप्तरूप में श्री श्रीश्यामस्वरूप श्री देवचन्द्रजी के धामदिल में बिराजमान थी, उस आवेश स्वरूप को लेकर श्री. इन्द्रावतीजी की वासना श्रीजी के स्वरूप में प्रकट हुई ।[1] इस संदर्भ में श्री. वृजभूषणजी का एक पद दृष्टव्य है —

'धन्य सखी इन्द्रावती तारतम्य पति संग ।
लै उतरी धव लै तहाँ बैठे सुन्दर अंग ।।
श्री इन्द्रावति वासना, मिलयो निज आवेश ।
करुणावपु केशव-सदन, धरयो महानर वेश' ।।[2]

'कलश' में इन्द्रावती को ही तारतम्य का साक्षात् अवतार माना गया है :—

'इन्द्रावती पिया संगे, उदर फल उत्पन्न ।
एक निज बुध अवतरी, दूजा नूर तारतम ।।
दोऊ स्वरूप प्रगटे, लई मीनों मीनें बाथ ।
एक तारतम दूजी बुध, देखती सन्मुख साथ' ।।[3]

श्री. इन्द्रावती के धामदिल में श्री धामधनी के सत्संग से निजबुद्धि और [illegible] तारतम दोनों अवतरित हुए । ये दोनों आपस में आबद्ध हो गये [illegible] अर्थात् अक्षर की जाग्रत बुद्धि ने तारतम को धारण किया जिसके फल से पाँचों स्वरूप : बुद्धि, आवेश, तारतम, आज्ञा और दया : श्रीजी के हृदय में बिराजमान हुए । 'लीलाप्रकाश' में इन्द्रावती स्वरूप प्राणनाथजी को तारतम्य का साक्षात्

---

१. 'निजानन्द चरितामृत' पृ. २६६ ।
२. 'वृतान्त मुक्तवली' पृ. ३२ ।
३. 'कलश' पृ. २३ ।

अवतार कहा गया है ।[१] `निजानन्द चरितामृत` में इस प्रकार का एक उल्लेख मिलता है कि वैराग्य उत्पन्न होने पर प्राणनाथ जी स्वामी देवचन्द्र के [redacted] चरणों में जाकर कहने लगे — `हे सद्गुरु ! मेरे शरीर में कौन-कौन से अवगुण हैं । कृपा करके आप मुझे बताइये । कारण यह है कि मुझे खुद के अवगुण दिखायी नहीं देते ।` इस पर श्री निजानन्द सद्गुरु ने कहा `हे मेहराज जी ! तुम तो श्री इन्द्रावती की वासना हो और निर्मल आत्मा हो । तुम्हारे अन्दर कोई विकार नहीं । इसकी चिन्ता मत करो ।`[२]

`[redacted] कलश` के बाद की रचनाओं में प्राणनाथ जी ने महामति नाम दिया है । अतः हमें यह मान लेने में संकोच नहीं होना चाहिए कि इन्द्रावती और महामति अन्य कोई नहीं, स्वयं प्राणनाथ ही थे । उनके अनुयायी भी फूलबाई तथा तेजकुंवरि को ही प्राणनाथजी की दो पत्नियाँ स्वीकार करते हैं । उनकी पत्नी कविता करती थीं या नहीं यह विवादास्पद ही है ।

स्वामी प्राणनाथ अल्पायु में ही विरक्त होकर घर से निकल पड़े थे । देश-भ्रमण तथा सत्संग से इन्हें अरबी, फारसी, संस्कृत तथा हिन्दी का ज्ञान सहज ही प्राप्त हो गया था । वेद, कुरान, इंजील तथा तौरेत आदि अनेक धर्म ग्रन्थों का अध्ययन कर इन्होंने जिस ज्ञान एवं धर्म का उपदेश दिया उसने तद् युगीन

---

१. `तो तारतम सरूप श्री इन्द्रावती कही, ये स्वरूप पंचमिलि महामति भई ।
ये पंच स्वरूप को निरनय भयो, सो श्रीजीये `कलश` में कह्यो` ।।

२. `निजानन्द चरितामृत` पृ.३११ ।

विभिन्न संस्कृतियों के अमानवीय संघर्षों को मिटाकर समन्वयवाद की वल्लरी को सींचा जिसका मधुर फल हमें आगे चलकर थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन, और अहमदिया जैसे सम्प्रदायों के रूप में दीख पड़ता है। कबीर [redacted] एवं नानक आदि की दृष्टि तो केवल हिन्दू और मुसलमानों के धार्मिक मतभेदों को ही भेद सकी थी, परन्तु स्वामी प्राणनाथ की दृष्टि समस्त धर्मों : ईसाई, यहूदी, पारसी आदि : के वाद-विवादों को मिटाती हुई सर्वधर्म समन्वय की ओर अग्रसर हो सकी थी। वे अपने समय के सबसे बड़े समन्वयवादी नेता थे। संवत् १७३५ में इन्होंने हरिद्वार के कुंभ-मेले में अपने धार्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए जिस सर्वधर्म परिषद का आयोजन किया उसमें इन्हें पूर्ण सफलता मिली। स्वामीजी की समन्वयात्मक भावना ही इसका पोषक थी। इन्होंने ठठ्ठा, मस्कत, अब्बास, लाठी, लखिया आदि [redacted] अनेक [redacted] द्वीपों की यात्राएँ कीं तथा इसी अखण्ड भावना का प्रचार एवं प्रसार किया।

संवत् १७३० में प्राणनाथजी सूरत पधारे। वहाँ पर प्रणामी गद्दी की स्थापना कर इन्होंने फकीरी गादी का श्रीगणेश किया। यहीं पर उन्होंने 'कलश' नामक गुजराती ग्रन्थ की भी रचना की जिसकी पूर्णाहुति संवत् १७३१ में हुई। स्वामीजी का सर्वप्रथम हिन्दी ग्रन्थ 'सनंध' बताया जाता है जो कुरान शरीफ के मानव-प्रेम एवं दया के पोषक तत्त्वों पर आधारित है। 'सनंध' का रचनाकाल संवत् १७३५ माना जाता है।

गुजरात, हरिद्वार एवं दिल्ली का भ्रमण करते हुए स्वामीजी संवत् १७४० में पन्ना : बुन्देलखंड : में पधारे । उन्होंने अपनी उत्तरकालीन रचनाएँ : खुलासा, खिलवत, परिक्रमा, सागर, श्रृंगार, सिन्धी, मारफत सागर, क्यामतनामा आदि : यहीं पर लिखीं । राजा छत्रसाल इनके परम शिष्यों में से थे । ऐसा कहा जाता है कि इन्हें स्वामी प्राणनाथ ने पन्ना के निकट किसी हीरे की खान का पता बताया था । इस सम्बन्ध में डॉ. बडथ्वाल का कथन है कि- 'मैं तो समझता हूँ कि वह खान भगवद्-भक्ति थी ।'[१] छत्रसाल को प्राणनाथ द्वारा लिखा गया आशीर्वाद का एक पद भी प्रसिद्ध है—

'छत्ता तेरे राज में धक धक धरती होय ।
जित जित घोड़ा मुख करे तित तित फत्ते होय ।।'

<u>रचनाएँ :</u>

महाराज छत्रसाल ने प्रणामी सम्प्रदाय के धार्मिक इतिवृत्त को जानने के लिए प्राणनाथ जी के सुयोग्य शिष्य लालदास जी से बीतक-ग्रन्थ लिखवाया/इसके साथ ही स्वामीजी की संपूर्ण वाणी जो अबतक प्रकीर्ण रूप में थी छत्रसाल की प्रेरणा से ही स्वामीजी के अन्य शिष्य श्री. केशवदासजी द्वारा संवत् १७५१ आश्विन कृष्णा चतुर्दशी को 'श्रीमतारतम्य सागर' के रूप में संकलित हुई जिसमें स्वामीजी के निम्न लिखित ग्रन्थों का संकलन किया गया है —

:१:	रास	:३:	षड्ऋतु
:२:	प्रकाश	:४:	कलश :गुजराती:

---

१. हि. का. नि. स., पृ. १३४ ।

:५:	प्रकाश	:११:	परिक्रमा
:६:	कलश : हिन्दी :	:१२:	सागर
:७:	सनंध	:१३:	शृंगार
:८:	कीर्तन	:१४:	सिन्धी
:९:	खुलासा	:१५:	मारफत सागर
:१०:	खिलवत	:१६:	क्यामतनामा

:१७: क्यामतनामा : बड़ा :

इसमें प्रथम चार ग्रन्थ गुजराती भाषा में रचित हैं तथा शेष सभी हिन्दी में लिखे गये हैं । अखिल प्रणामी समाज इस अपूर्व ग्रन्थ की पूजा करता है और प्रणामी पंथ तथा धर्म की अटूट सम्पति के रूप में इसकी रक्षा भी । यही 'कुलजम स्वरूप' अथवा 'कलजमे शरीफ' के नाम से भी प्रसिद्ध है । डॉ. बडथ्वाल ने इसे कलजमेशरीफ ही कहा है जिसका अर्थ है मुक्ति की पवित्र धारा ।[१] श्री मिश्रीलाल शास्त्री ने कुलजम स्वरूप का अर्थ इस प्रकार दिया है — 'सम्पूर्ण ग्रन्थों को जमा करने से जो स्वरूप हुआ, उसे 'कुलजमस्वरूप' कहा गया ।'[२] इस पंथ के अनुयायी स्वामी प्राणनाथ की समस्त वाणी को 'श्रीमुख वाणी' के नाम से भी अभिहित करते हैं । सूरत के तुलजाराम भट्ट कृत 'तारतम्य सागर' नामक एक अन्य ग्रन्थ 'करुणावती' की छापसे लिखा गया मिलता है जिसमें परम पुष्टि लीला का संपादन है ।[३] तुलजाराम भट्ट वस्तुतः प्रणामी पंथ के ही अनुयायी थे जिनके निज नित्यविहार का नाम करुणावती था ।

---

१. हि. का. नि. स., पृ.१३३ ।
२. साहित्य सन्देश, पृ.६३ अगस्त १९५८ ।
३. 'एह लीला मरजादी कहाई,
तुलजाराम पुष्टि लीला माहीं ।'
— हस्तप्रति भरोड़ा : जि. खेड़ा :, पृ.१९० तथा १९६ ।

स्वामीजी ने अपनी वाणी के विषय में स्पष्टता करते हुए लिखा है कि यह सम्पूर्ण जगत चौदह लोकपर्यन्त माया के फन्दे में फंसा हुआ है जिससे प्राणी छल के बन्धनों में बंधा है, किन्तु उसे माया के रूप की जबतक प्रतीति नहीं होती तभी तक वह आँखों वाला होकर भी अंधा ही है । ऐसे मायान्ध प्राणी को तारतम्य-ज्ञान आत्मदृष्टि प्रदान कर सकता है ।[१] तारतम्य-ज्ञान को उन्होंने अत्यन्त गम्भीर एवं गहन कहा है । यदि वे इसे प्रकट न करें तो आत्म-जिज्ञासु जीवन माया के अन्धकार से कैसे छूट सकेंगे ?[२] तुलसीदास की तरह प्राणनाथ ने भी अपनी वाणी को वेदशास्त्र सम्मत तथा परम सत्य आध्यात्मिक वाणी कहा है । इसमें जहाँ एक ओर मानव-कल्याणकारी सकल निगमागम के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है, वहाँ दूसरी ओर इस्लाम-धर्म समर्थित कुरान की एकता, प्रेम, दया और जन कल्याण का उद्घोष है ।[३] 'सनंध' में उन्होंने कुरान की व्याख्या भारतीय दर्शन के आधार पर की है । प्राणनाथजी सच्चे अर्थों में मानवता के उपासक थे । अत: मानवमात्र की समझी और बोली जानेवाली व्यापक एवं सरल भाषा हिन्दुस्तानी को उन्होंने अपनाया क्योंकि उनकी दृष्टि में यही एक मात्र समर्थ भाषा थी जो मानव मात्र के हृदय को अन्दर और बाहर से निर्मल बना सकती है ।[४]

---

१. रास, पृ.१ : ४३ ।

२. रास, पृ.१ : ४५ ।

३. 'हकीकत फुरमान की, कहूँ सुनो सब मिल ।
नूर अक्ल आगे ल्याय के, साफ करूँ तुम दिल ।।' – सनंध–पृ.१:११ ।

४. 'बिना हिसाबें बोलियाँ मिने सकल जहान ।
सबको सुगम जानके कहुँगी हिन्दुस्तान ।। – सनंध–पृ.१:१५ ।

महामति तथा इन्द्रावती की छाप लेकर लिखे गये प्राणनाथ के एकाधिक हिन्दी पद दृष्टव्य हैं :—

महामति :

`खोज थके सब खेल खसम री,
मनही में मन है उरझाना, होत न काहू गम री ।
मन ही बाँधे मन ही खोले, मन तम मनहि उजास री ।
ये खेल है सकल मन का, नेहचल मनहि को नास री ।।

00 00 00

सब मन में न कछू मन में, खाली मन मनही में ब्रह्म,
महामति मन को सोई देखे, जिन दृष्टे खुद खसम`।।[१]

इन्द्रावती :

`तुम बिना लाड पूरन कौन करे,
इन माया में दूजी बेर देह कौन धरे ।
तुम मोसो गुन किये अनेक, सो चुभे मेरे हृदय में लेख ।`
तुम पर वार डारुँ जीव सो देह, तुम किये मोसु—
अधिक सनेह ।

00 00 00

श्री इन्द्रावती चरणों लागे, कृपा करो तो जागी जागे।

धामी-मतावलम्बी प्रणानाथजी की वाणी को क्योंकि आदि ग्रन्थ मानते हैं अत: उनकी दृष्टि में इसे मुद्रित करना आदि वाणी का अपमान है । यही कारण है कि प्रणामी-मन्दिरों में सुरक्षित हस्त-प्रतियों का प्रकाशन अभी तक नहीं हो सका ।

---

१. `संतवाणी अंक` : कल्याण : वर्ष २९, संवत् २०११, पृ.३७७ ।
२. `प्रकाश प्रकरण`—१८ ।

गुजरात के प्रणामी-मन्दिरों में 'श्रीमुखवाणी' की हस्त प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। भरोड़ा के महन्त स्वामी कृष्णप्रियाचार्य ने अनेक पाठान्तर-भेदों को दर्शाते हुए इसकी प्रामाणिक प्रतिलिपि तैयार की है जिसमें कुल १६००६ चौपाइयाँ हैं। जनमनगर की हस्तप्रति में ५०० चौपाइयाँ इससे अधिक हैं। ओड : जि. खेड़ा : के प्रणामी मन्दिरों में 'श्रीमुखवाणी' की दो हस्तप्रतियाँ सुरक्षित हैं। एक है बाबा भिखारीदास के शिष्य दयालदास के द्वारा लिखी हुई प्रतिलिपि, जो सूरत के मोटा मन्दिर में उतारी गयी है। इसका रचनाकाल संवत् १६०५ है। यह हस्तप्रति ओड मन्दिर : जि. खेड़ा : के महन्त श्री. सेवादास जी के पास सुरक्षित है। दूसरी है श्रीजीरदास की लिखी हुई प्रतिलिपि जो ओड़ में ही विट्ठलदास लालदास जी के मन्दिर में सुरक्षित है। यह प्रतिलिपि शिवादास प्रणामी महाराज ने की है। प्रथम पृष्ठ की प्रथम पंक्ति इस प्रकार है —

'श्री निजनाम श्रीकृस्नजी ।। अनाद अक्षरातीत ।
सो तो अवनी हेरतीश्रे । सब वीधी वतन सहीत ।।१।।
श्री किताब श्रीजीरदास लिखी है ।'

प्रस्तुत हस्तप्रति पचास वर्ष से अधिक प्राचीन प्रतीत नहीं होती। उक्त हस्तप्रति से एक पद उधृत करना समीचीन होगा : —

'साधो भाई चीनो सब कोई चीनो,
एसो उत्तम आकार तोसो दीनो ।
जिन प्रकट प्रकास जो कीनो ।।१।।
मनु सदेह अखण्ड फल पाइये ।
सो क्यों पाइये के वृथा गुमाइये ।।
सो तो अधखीन को अवसर ।

गो गमावत मांज नींदर ।।२।।
सबदा कहे प्रगट प्रवीन,
सबदा सतगुरु सु ब करावे पैहेचान ।।
सतगुरु सोइये जो अलख लखावे
अलख लखावे बिन आग न जावे ।।३।।[१]

साहित्यक दृष्टि से प्राणनाथ की रचनाएँ स्तरीय नहीं कही जा सकतीं यद्यपि कहीं-कहीं भाषा लालित्य-एवं काव्यत्व के दर्शन अवश्य होते हैं ।उदाहरणार्थ—

:१: 'रस मगन भई सो क्या गावे । टेक ।
बिचली बुध मनचित मनुआ,
ताय शब्द सीधा मुख क्यों आवे ।।
बिचल गई गम वार पार की
और अंग न कछुए साव ।।
पियारस मैं यों भई महामती,
प्रेम मगन क्यों करसी गाव ।।'

:२: बिन्द मैं सिन्धु समाय रे !
साधो बिन्द मैं सिन्धु समाय ।
त्रिगुण सरूप खोजत भये विसमय,
पर अलख न जाय लखाय ।।

विचारों की सुघड़ता के साथ साथ भाषा ऊँची घाट की नहीं बन पड़ी है । छन्दों मैं सर्वत्र अव्यवस्था है । छन्दों के विषय मैं प्राणनाथ ने स्वयं कहा है कि अक्षर और मात्राओं की लघु और दीर्घता का ध्यान रखना तो केवल कवियों का खिलवाड़ है, इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ किन्तु यह मेरी इस परम आध्यात्मिक वाणी

---

१. 'कुलजम स्वरूप' : हस्तप्रति-ओड़ : पृ.२१६ ।

मे शोभा [redacted] नहीं देता ।[१] इनकी भाषा मै अरबी और फारसी के शब्दों का पुट है जिसमें हिन्दी-गुजराती का अपूर्व मिश्रण है । प्राणनाथ जी की भाषा वस्तुत: मध्यकाल की वह हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी है जिसे आधुनिक खड़ी बोली का आदि रूप कहा जा सकता है ।

प्रणामी साहित्य की शोध खोज के पूर्व प्राय: ऐसा माना जाता रहा कि खड़ी बोली मैं गद्य-लेखन का प्रारंभ आगरा के गुजराती भाषाभाषी [redacted] पंडित लल्लूलालजी के `प्रेमसागर` : सन् १७६४—१८२६ : से हुआ, किन्तु अब यह तथ्य प्रकाश मै आ चुका है कि `प्रेमसागर` की रचना के प्राय: १५० पूर्व स्वामी प्राणनाथ ने हिन्दी गद्य का प्रयोग कर अपनी भाषा को सर्व प्रथम `हिन्दुस्तानी` के नाम से अभिहित किया था । इस प्रकार सिन्ध, गुजरात, महाराष्ट्र, मालवा एवं काठियावाड़ आदि विभिन्न प्रदेशों मैं भ्रमण करते हुए स्वामी प्राणनाथ ने जहाँ एक ओर सर्वधर्म समन्वय की भावना को जगाया वहाँ दूसरी ओर उनकी ओजमयी प्रभावपूर्ण वाणी ने हिन्दी भाषा के प्रचार एवं प्रसार मैं भी महत् योग दिया, इसमें सन्देह नहीं ।

प्राणनाथ के शिष्य :

इनके शिष्यों की सबसे बड़ी देन है `वीतक` जिनमें स्वामी प्राणनाथ का जीवन चरित्र अद्भुत शैली मैं लिखा गया है । श्री.नवरंग स्वामीकृत वीतक, लालदासकृत वीतक, तथा श्री ब्रजभूषणकृत वृतान्त मुक्तावली इस रूप मैं [redacted] उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं । वस्तुत: इस प्रकार की `वितक-शैली`

१. रास, पृ.२:[redacted] ३ ।

ने हिन्दी-साहित्य को एक नवीन शैली प्रदान की ।

:१२: मुकुन्ददास :

स्वामी प्राणनाथ के पश्चात् धामी सम्प्रदाय के अन्तर्गत स्वामी मुकुन्ददास का नाम विशेष उल्लेखनीय है । इन्होंने 'नवरंग' नाम से अपनी रचनाएँ लिखी हैं । साम्प्रदायिकों का मत है कि 'नवरंग' इनका उपनाम नहीं था अपितु ब्रह्मधाम की शक्ति श्री नवरंगबाई जी स्वामी मुकुन्ददासजी के नाम से इस संसार में अवतरित हुई । अत: 'नवरंग' शब्द का सम्बन्ध ब्रह्मधाम : परमधाम : से जोड़ा जाता है । इनके लिखे हुए करीब १६७ ग्रन्थ बताये जाते हैं । इनका सबसे प्रसिद्ध एवं विशाल ग्रन्थ है—'नवरंग-सागर' जिसमें ३६००० चौपाइयाँ हैं । अन्य उल्लेखनीय ग्रन्थ इस प्रकार हैं :—

:१: मिहिराज चरित	:४: लीला-प्रकाश
:२: सुन्दर-सागर	:५: गीता-रहस्य
:३: षट-शास्त्र	:६: गुरु-शिष्य-संवाद

:७: फुटकल पद ।

इनकी भाषा ब्रज, गुजराती ~~एवं~~ बुन्देलखण्डी एवं खड़ीबोली मिश्रित हिन्दी है । 'सुन्दर सागर' में इन्होंने स्वामी देवचन्द्रजी का जीवन-चरित्र लिखा है ।

मुकुन्द स्वामी सूरत निवासी थे । इनका जन्म संवत् १७०५ माना जाता है । इनके पिता का नाम राघवजीभाई तथा माता का नाम कुँवरबाई था । इनकी ~~प~~ पत्नी का नाम सुशीलाबाई था । इनकी जाति के विषय में मतभेद है। कुछ इन्हें ~~ब्रह्म~~ ब्राह्मण मानते हैं, कुछ मावसार और कुछ अग्रवाल वैश्य । अधिकांश इन्हें मावसार ही मानते हैं ।

पच्चीस वर्ष की आयु में इन्होंने स्वामी प्राणनाथ से तारतम्य-दीक्षा ग्रहण की । अपनी प्रबल निष्ठा एवं भक्ति के बल पर कुछ ही समय में ये स्वामीजी के दाहिने हाथ बन गये और पन्ना में उनके साथ दीर्घ काल तक रहे । प्राणनाथजी के धाम-गमन के पश्चात् ये उदयपुर चले गये और राजस्थान में प्रणामी धर्म का प्रचार करने लगे । उदयपुर का प्रणामी मन्दिर भी इन्हीं का बनवाया हुआ है । मुकुन्द स्वामी का धाम-वास संवत् १७७५ माघ वदी दशम को हुआ ।[१] उदयपुर में अब भी इनकी समाधि मौजूद है ।

:१३: मोहम्मद अमीन :: उप.काल: सं.१६६० :

ये औरंगजेब के राज्यकाल में वर्तमान थे । इनका समय हिजरी ११०६ अर्थात् संवत् १६६० के आसपास माना जाता है । इस युग के अन्तिम मसनवीकारों में मोहम्मद अमीन का नाम सर्वश्रेष्ठ है । `युसुफ-जुलेखा` इनकी महत्वपूर्ण रचना है । भाषा और शैली की दृष्टि से यह निश्चय ही गुजरात की श्रेष्ठ मसनवियों में से एक है । प्रस्तुत मसनवी की कुछ पंक्तियाँ यहाँ दृष्टव्य हैं :—

`भौंरा लेते फूल रस, रसिया लेते बास,
माली सींचे आसकर, भौंरा खड़ा उदास ।`

`तेरे पंथ कोई चल न सके, जो चले सो चल चल थके ।
पढ़ि पंडत पोथी धोया, सब जान सुध बुध खोया ।
सब जोगी जोग बिसारे, सब तपिश तप पुकारे ।
एक दुरस्ती दरस भुले, सिर नांगे पाँव फूले ।।`

१. `सुन्दर सागर` : भूमिका :, पृ.१२ ।

:१४: नाथ भवान : अनुभवानंद :

इनका समय सं.१७३७ से १८५६ तक निश्चित किया जाता है ।[१] पूर्वाश्रम में इनका नाम नाथभवान था, किन्तु सन्यास ग्रहण करने पर इन्हें अनुभवानंद के नाम से अभिहित किया गया । ये सौराष्ट्र निवासी वडनगरा नागर थे[२] जो जूनागढ़ की वाघेश्वरीमाता के उपासक थे[३] देवी के अनन्य उपासक अनुभवानंद ने गुजराती में सैकड़ों गरबों की रचना की है जो आज भी गुजरात में `नोरता` : नवदुर्गा-उत्सव : के अवसर पर गाये जाते हैं । इनके द्वारा रचित `अंबा आनन` का गरबा तो अति प्रसिद्ध है ।[४] इनकी दृष्टि में देवी का स्वरूप स्थूल नहीं था अपितु उसे इन्होंने ब्रह्म की विश्व व्यापक चिन्मयी शक्ति ही माना । उपासक के रूप में ये शाक्त अवश्य थे किन्तु सिद्धान्ततः अद्वैतवादी थे ।

कृतित्व :

आचार्य रावल ने इनके द्वारा रचित श्रीधरीगीता, विष्णुपद तथा चातुरी आदि का उल्लेख किया है ।[५] गौ.गु.सा.परिषद की रिपोर्ट के आधार पर इनके द्वारा लिखे गये निम्न लिखित ग्रन्थों का पता लगता है :—

---

१. देखिए `शाक्त सम्प्रदाय` दी.ब., न.दे.मेहता, पृ.११५ ।
२. मध्यकालीन गुजराती साहित्य, आ.अनंतराय रावल, पृ.१६२ ।
३. `शाक्त सम्प्रदाय` पृ. ११५ ।
४. गरबा का ध्रुवपद :—
`अंबा आनन कमल सोहामणु,
तेना शुं कहुं वाणी वखाण रे ।`
५. `मध्यकालीन गुजराती साहित्य`— आ.अनंतराय रावल ।

:१: शिवगीता
:२: ब्रह्मगीता
:३: भागवतसार
: कृष्णलीला :
:४: चिद्शक्ति-विलास
:अंबाजी की पूजा :
:५: ब्रह्म-विलास
:६: आत्म-स्तवन
:७: पद - ७६ ।

गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, अहमदाबाद तथा नडियाद की डाह्यी लक्ष्मी लायब्रेरी की हस्त प्रतियों में इनके कुछ पद : हिन्दी-गुजराती : उपलब्ध होते हैं । डॉ. सुरेश जोशी ने इनके कुछ गुजराती पदों की समीक्षा अपने अधिनिबन्ध में की है ।[१] हम यहाँ उनके कुछ हिन्दी पदों की समीक्षा प्रस्तुत करेंगे ।

अनुभवानंद के समस्त हिन्दी पद अभी तक अप्रकाशित ही हैं, जिनमें उच्चकोटि के पदों की संख्या सौ से ऊपर बैठती है । इनमें से कुछ तो 'विष्णुपद' में संकलित हैं तथा कुछ फुटकल पद विभिन्न हस्त प्रतियों में उपलब्ध होते हैं । इन सभी पदों के संग्रह एवं सम्पादन की बड़ी आवश्यकता है जिसके द्वारा निश्चय ही एक उच्चकोटि का ज्ञानी कवि प्रकाश में आयेगा ।

कवि ने कबीर और अखा की भाँति पूर्ण ब्रह्म की प्रस्थापना में कहा है कि वह न स्थूल है न सूक्ष्म, न दीर्घ है न लघु, न वह वर्णाश्रम है और न धर्म अधर्म ही । वह तो रूप, गुण और कर्म से परे बिना वाणी के बोलता है, दृगों के बिना देखता है और कानों के बिना सुनता है, पैरों के बिना नृत्य करता है और हाथों के बिना तान लड़ाता है । उसके बिना ध्याता, ध्येय और ध्यान

---

१. A Critical Edition of Narahari's 'Jnān Gita'
- Dr. Suresh Joshi, M.S.University,Baroda.
Page: 411-38,

सभी निर्मूल है । वह तो आकाश की भाँति अविचल और अखण्डित है । उसे परखने के लिए अनुभव की आवश्यकता है ।[१] इस विराट ब्रह्म की कल्पना में कवि ने उसे ऊँचे घाट का वासी कहा है, ब्रह्माण्ड जिसका सिर है और चंद्र तथा सूर्य दोनों जिसके नेत्र हैं जिसके उदर में सातों सागर समाविश्ट हैं । अत: जिसके सगुण रूप का इतना विस्तार है, उसके निर्गुण का पार कौन पा सकता है ।[२] सभी का प्रिय और सभी से निराला है यह अद्वैत चेतन, जिसका न कोई माता-पिता है और न रूप-रेख ही ।

अनुभव और कल्पना के सम्यक रसावेश से आनंदित है अनुभवानंद का कवि-हृदय, जो अखा की ही भाँति ज्ञान-घटाओं को देख आत्म-विभोर हो उठता है :—

'बरषत अनुभव उमग्यो सावन ।
जल थल होय रह्यो सब हरिया
लागे खेत सोहावन ।।'

अनुभव के उमड़ते घुमड़ते बादलों में कवि का मन मयूर नाच उठता है और अज्ञान की चादर स्वत: सरक पड़ती है :—

---

१. 'स्थूल सूक्ष्म दीर्घ लघु नाहिं । श्वेतादिक रंगरूप न काहि ।।
वर्जित नाम रूप गुन कर्म । वर्णाश्रम नहिं धर्मा धर्म ।।
करत उचार सदा बिन बान ।दृग बिन देखे सुने बिन कान।।
पग बिन नाचत कर बिन तान । वा बिन नहिं ध्याता ध्ये ध्यान ।।
अचल अखंडित यों आकाश । सूर्य त्यों सब करत प्रकास।।
अनुभवरूप अनुभवानंद । दृष्टासाक्षि सदा निर्द्वन्द ।।'

२. 'एकी समे ब्रह्मंड तेरा सीस । भूषन तेरे पाँच-पचीस ।।
चंद सूर्य दोउ तेरे नैन । सारदा सोइ है तेरे बेन ।।
तेरे उदर में सागर सात । सप्त पातार लौं चरन विख्यात ।।
सगुण रूप को एसो विस्तार । निर्गुन को कौन पावे पार ।।'

'अफर फरी लागी है ताते,
सरिहै अज्ञान की चादर ।
चिहुं दिस चिर व्यापक नजरावत,
हरि हरि धरती पादर ।।
सद्गुरु करुना करि समफायो,
नजर बतायो नाजर ।।
अनुभवानंद आप भरपुरन,
जब चीन्हे सब हाजर ।।'

आनंदरूप आत्मा के प्रकटित होते ही माया का अंधकार अपने आप विनष्ट होता चला जाता है । शान्ति और सत्य की आत्मा से उत्पन्न परमानंद बालमुकुन्द[1] को रहस्य के परदे पर खेलते हुए देखकर कवि बधाई के गीत भी गाता है :-

बधाई बाजत घर-घर आज ।।

oo oo oo

जन्म नहिं सो जन्म दिषावत करत जनन के काज ।।
अनुभवानंद भजत ताहाँ मासल साथ लिए सब साज ।।

गुजरात के ज्ञानमार्गी कवियों में काव्यत्व की दृष्टि से अनुभवानंद की वाणी अवश्य ही हमारा ध्यान आकर्षित करती है । अखा की ज्ञान गरिमा, कबीर का रहस्य वा दर्शन और सूर की मार्मिकता इस कवि में सहज ही दृष्टिगत है । कवि की भाषा ब्रजभाषा के अधिक निकट है यद्यपि गुजराती का प्रभाव भी उसके हिन्दी पदों पर पड़े बिना रह नहीं सका है । 'नाजर-हाजर' जैसे अरबी-फारसी के शब्द भी इतस्तत: प्रयुक्त हुए हैं । शैली में सर्वत्र प्रासादिकता एवं सौष्ठव है ।

---

१. 'निहार्‍यो नेहभर बाल मुकुन्द ।।
शान्त देवकी सत्य वसुदेव तें प्रगट्यो परमानंद ।।'
— विष्णुपद ।

:१५: बूटिया :

श्री. कै.का.शास्त्री ने इनका समय १८ वीं शती का पूर्वार्द्ध माना है ।[1] इनके नाम को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वे किसी सामान्य ब्रह्मेतर जाति के रहे होंगे । सत्संग एवं गुरु-कृपा से इन्हें वेदान्त विषयक रचनाकौशल प्राप्त हुआ होगा ।

इनके द्वारा रचित कुल १२ पद मिलते हैं, जिनमें इनकी ज्ञान-गरिमा का अनुमान किया जा सकता है । हिन्दी-गुजराती मिश्रित एक पद दृष्टव्य है :-

'जेणे गगन दोही ने दूध पीधा रे,[2]
सोही मतवाला बोल्या दीवाना..टेक०
ध्यान धारणा नाम निरंतर,
व्यापक आत्म चीन्या रे हो । ..सोही०
सुरत नुरत की रे धमण धमावी,
काम कोयला ने वाल्या रे हो ।..सोही०
०० ०० ००
कहे बूटियाजी कोई अद्भुत ज्ञानी,
आश निराश थई खेले रे हो ।[3]:सोही०

बूटिया ने वास्तव में ज्ञान गगन का दोहन कर रहस्यानुभूति का पयपान किया था । उन्होंने विराट ब्रह्मानुभूति की अभिव्यक्ति सरल शब्दों में की है तथा गूढ़ विचारों को कूट कूट कर बोध गम्य बनाया है ।

---

१. 'कवि चरित' भाग १-२, पृ.५४७ ।
२. तुलनीय : 'गोरख तो गोपलेलो,
गगन गाइदुहि पीवैलो ।' ब गो.बा., पृ.११३, पद २१ ।
३. गुज.सा.रे. खंड १, पृ.१८२-८३, से उधृत ।

इसलिए प्रसिद्ध किंवदन्ती है कि – 'बूटियाए कूटो वाल्यो ।' श्री शास्त्रीजी ने इनके विषय में कहा है – 'बूटिया में हमें हिन्दी-संस्कारों की छाप मिलती है । कुछ हिन्दी-प्रयोग भी वे कर लेते हैं इसीलिए यह वस्तु पकड़ी जा सकती है कि इस प्रकार के ज्ञान-मार्गी सन्तों को हिन्दी-परम्परा मिली हो ।'[१] बूटिया पूर्व मध्य-काल के अन्तिम प्रखर ज्ञानी-कवि हैं ।

पूर्व मध्यकाल के कुछ अन्य सन्त-कवियों में हम खूब मुहम्मद चिश्ती :सं.१६६६:, सैयद शाह हाशिम : सत्रहवीं शती :, नेहाल : सत्रहवीं शती, बालम चमार : सत्रहवीं शती का मध्यभाग :, मुकुन्दगूगली : सं.१७०८:, संत मयूखदास :१७ वीं शती उत्तरार्द्ध :, मोभाराम और देवी तुलजा : सं.१७ वीं शती उत्तरार्द्ध :, धोन तथा रणछोड़ आदि का नाम विशेष रूपसे ले सकते हैं । गुजरात के श्रेष्ठ मसनवीकारों में खूब मुहम्मद चिश्ती का नाम लिया जाता है जिन्हों ने 'खूब तरंग' नामक मसनवी की रचना की है । सैयद शाह हाशिम गूजरी की परम्परा में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं, जिनकी भाषा में खड़ी बोली का निखरा हुआ रूप मिलता है ।[२] बालम चमार उत्तर गुजरात के निवासी थे, जो खाल उतारने का व्यापार किया करते थे, किन्तु सूरत के माधवदास के सदुपदेशों से इन्हें वैराग्य प्राप्त हुआ । मुकुन्द द्वारका के गूगली ब्राह्मण थे जिन्होंने हिन्दी में 'भक्तमाल' नामक अपूर्व एवं बृहद ग्रंथ की रचना की थी । आठ भागों में रचे गये इस विशाल ग्रंथ के मात्र दो भाग – 'कबीरचरित्' और 'गोरखचरित्' उपलब्ध होते हैं । ऐसा प्रसिद्ध है कि ज्ञानवाद की ओर इनका आकर्षण केशवानंद सन्यासी द्वारा हुआ था । संत मयूखदास मूल बुरहानपुर के निवासी थे । बचपन में ही संत-समागम से इनके हृदय में वैराग्य जागा और घूमते घामते गुजरात चले आये । इन्होंने अनेक हिन्दी पदों

---

१. 'गु.सा.रे. खंड-१, पृ.१८३ ।

२. 'ये दुनिया के लोग कीड़े-मकोड़े,
गेहूँ शहद पर दौड़ते घोड़े,
डूबते बहुत निकलते थोड़े ।' – सैयद शाह हाशिम ।

की रचना की है । संत मोभाराम और देवी तुलजा की एक रसप्रद घटना प्रसिद्ध है कि मोभाराम-रचित एक पद[1] तुलजा नामक किसी धोबी कन्या को कपड़ा धोते धोते हाथ लगा, जिसे पढ़ते ही तुलजा ने उत्तर में अन्य दोहा लिखा और धुले कपड़े की जेब में पूर्ववत् प्रथम दोहे के साथ संलग्न कर दिया । तुलजा-रचित दोहा[2] पढ़कर मोभाराम को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उसकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर उन्होंने तुलजा को शिष्या बनाया तथा काव्य रचना की प्रेरणा भी दी । मोभाराम तथा देवी तुलजा रचित अनेक संयुक्त पद भी देखे जाते हैं । रणछोड़ तथा धोन के कुछ हिन्दी पदों का संग्रह 'भजनसागर भाग' १-२ में मिलता है ।[3]

चारणी सन्तों में ईसरदास : सं.१५९५ : को हम नहीं भुला सकते । इन्हें 'ईसरा परमेसरा' के नाम से अभिहित किया जाता है । जामनगर में इन्होंने चालीस वर्ष तक निवास किया था । इनके द्वारा रचित एक दर्जन ग्रन्थों में प्राय: दस ग्रन्थ आध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत हैं, जिनमें 'हरिरस' सर्वप्रिय एवं अद्वितीय रचना है । यह ११६ कड़ीबद्ध स्तुति काव्य है जो चारणीशैली के छन्दों में योजित है । डॉ.मेनारिया ने इनकी भाषा को 'डिंगल' कहा है ।[4]

---

१. 'कनक कटारी कामनी, करे कलेजा दाग,
मोभा परसन तन करे, अध अभागी जाग ।'
—मोभाराम ।

२. 'नारी से जग ऊपने, दानव मानव देव,
नारी न होते जगत में जन्म किसके घर लेव ।'
—तुलजा ।

३. देखिए-स.सा.व.का, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित 'भजनसागर' पृ.६४५ ।

४. 'राजस्थानी भाषा और साहित्य', पृ.११५ ।

उत्तर मध्यकाल : सं.१७५० से सं.१६०० :

:१: भाण साहब : : सं.१७५४ – १८११ :

गुजरात में `भाण` नामके प्राय: अनेक सन्त हुए हैं। एक हैं कच्छ माडवी के रहनेवाले गिरनारा ब्राह्मण भाणजी मोहनजी : सं.१६२२ :, जिनके पाँच हिन्दी पदों का संग्रह अध्यात्म भजनमाला भाग २ में मिलता है।[१] दूसरे भाणदास का उल्लेख गुजरात के आद्य गरबीकार के रूप में श्री.के.का.शास्त्री ने किया है।[२] उन्होंने इनके पिता का नाम भीम तथा भाई का नाम दामोदर बताया है। आचार्य अनंतराय रावल ने इनके गुरु का नाम कृष्णपुरी बताया है।[३] इन्होंने भी `हस्तामलक` की रचना की थी। इनके द्वारा रची हुई ७१ गरबों की एक हस्तप्रति मिली है। आचार्य रावल ने इनके द्वारा रचित `अजगर-अवधूत-संवाद` का भी उल्लेख किया है।[४] एक अन्य कवि भाण : सं.१७८४ : गुजरात के औदीच्य ब्राह्मण : निवास खाचरौद-ग्वालियर : हो गये हैं जिन्होंने `संकट मोचन` हिन्दी ग्रन्थ की रचना की है।[५] यह ग्रन्थ बड़ा ही उत्कृष्ट है।

किन्तु इन सभी में वाराही के भाण साहब अत्यन्त प्रसिद्ध हैं जो कबीर के अवतार एवं `सोरठी-आद्यभक्त` माने जाते हैं। प्रस्तुत शीर्षक के अन्तर्गत हम उन्हीं रवि-भाण सम्प्रदाय के संस्थापक भाण साहब का उल्लेख

१. `अध्यात्म भजनमाला` भाग २, पृ.१७३–७४।
२. `कविचरित` भाग १ २, श्री.के.का.शास्त्री।
३. `गुजराती साहित्य` पृ.१३८।
४. वही पृ.१३८।
५. `फार्बस गुजराती सभा महोत्सव ग्रन्थ` पृ.३२०।

करेंगे जिनकी वाणी का अत्यधिक प्रचार सौराष्ट्र में हुआ था । उनके साहित्य पर सोरठी संस्कारों की गहरी छाप है । सौराष्ट्र के जन मानस में आज भी भाण साहब का स्थान `सोरठ नो कबीर` के रूप में अवस्थित है ।

इनका जन्म:संवत् १७५४: गुजरात के `कनखीलोड़` : चरोतर प्रदेश : नामक गाँव में हुआ था ।[१] ये जाति के `लोहाणा` थे । इनके पिता ठक्कर कल्याणजी स्वयं भक्तात्मा थे और माता अंबाबाई साध्वी गृहिणी थीं । ये स्वयं गृहस्थ थे । इनकी पत्नी का नाम मानबाई था, जिनसे दो पुत्रों का होना बताया जाता है । एक की मृत्यु पाँच वर्ष की अवस्था में हो गयी, दूसरा पुत्र खीमदास था, जो भाण साहब के ही अनुरूप ज्ञानी तथा ईश्वरभक्त निकला । रापर : कच्छ : की `गादी-परम्परा` खीमदास से ही शुरू होती है ।

भाण साहब के गुरु के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती यद्यपि जनश्रुति के आधार पर इनका गुरु कोई `आँबो-छट्ठो` मरवाड : गोपाल : बताया जाता है जिनका उपदेश पाकर ये गृहस्थ होकर भी विरागी एवं `सत्य शोधक` बन बैठे । लब्धाराम अथवा लाधाभाई[२] : कबीरपंथी : को भाण साहब का गुरुभाई बताया गया है ।[३] ये पूर्वाश्रम में चाणस्मा के लाधा रबारी थे और धुधरेज कबीर मन्दिर के महन्त श्री षष्ठमदासजी के उपदेशों से उनके शिष्य बने ।[४] इनके

---

१. क.स.क., दूलेराय काराणी पृ.१४६ ।
२. चौ.सा.परि, रिपोर्ट ।
३. फा.गुज.स.म.ग्र., पृ.३२२ ।
४. वही पृ.३२२ ।

द्वारा रचित कुछ हिन्दी रचनाएँ भी मिलती हैं ।[१]
षष्ठमदास संभवत: `आँबो छट्ठो` ही हैं, जिन्हें भाण का गुरु कहा गया है ।

भाण साहब किसी एक स्थान पर टिक कर नहीं रहे । वे अपने भ्रमण में चालीस शिष्यों की एक विशाल फौज को भी अपने साथ रखते जिससे मार्ग में उन्हें अनेक विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ता । इनका हृदय जितना उदार था, उतने ही उदार इनके सिद्धान्त थे । इसीलिए जामनगर में इन्हें `सा`ब` का पद मिला । जामनगर की एक वापिका `भाण वीरडी` नाम से विख्यात है । ऐसा प्रसिद्ध है कि भाण साहब के प्रताप से उसका जल [illegible] मीठा रहता है । भाण साहब के निर्वाण के विषय में अनेक दन्त कथाएँ प्रचलित हैं । कहा जाता है कि कमीजड़ा से प्रस्थान करते समय एक श्रद्धालु नारी के हठाग्रहपूर्वक यह कहने पर कि-`आगे बढ़ें तो आपको रामदुहाई है ।`- इन्होंने उसी स्थान पर जीवित समाधि ले ली । कहते हैं, यह घटना सं.१८११ में घटित हुई ।

भाण साहब के शिष्यों की संख्या बहुत अधिक थी, किन्तु उनके सबसे प्रिय शिष्य थे रविसाहब, जो विरक्त होने से पहले तणछा के व्याजखाऊ, धूर्त एवं हरिविमुख व्यापारी `रवजी` थे, जिन्हें भाण साहब ने अपने सदुपदेशों से `टोपी` पहनाई । यही रवजी आगे चलकर `रविसाहब` अथवा `रविदास` के नाम से गुजरात के पहुँचे हुए सन्तों में प्रसिद्ध हुए, जिनकी विशेष चर्चा

---

१. `प्राचीन कवियो अने तेमनी कृतिओ` पृ.३०० पर `संत महिमा` अप्रकाशित ग्रन्थ का उल्लेख, `गु.प्रै.में हस्तप्रति सुरक्षित ।

आगामी पृष्ठों में की गयी है ।

भाण साहब द्वारा रचित दो ग्रन्थों : :१: हस्तामलक, :२: रावण मन्दोदरी संवाद : तथा कुछ पदों का उल्लेख मिलता है ।[1] सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय द्वारा प्रकाशित 'रवि-भाण तथा मोरार नी वाणी' में भाण साहब के कुछ हिन्दी पद संग्रहीत हैं । इनके पदों की भाषा तथा विचारों को देखते हुए इन्हें कबीर का अनुगामी कहा जा सकता है । जगत की क्षणभंगुरता की ओर इंगित करता हुआ इनका एक हिन्दी पद भी देखिए :-

'जागो जग सुपन का मैला ।
राजरिद्ध सबही मन देखत, जगत भया अकेला ।।टेक।।
मात-तात-स्तार-कबीला, कदि चलत नहिं मैला,
एकहि आना एक ही जाना, पाप पुण्य घर थैला ।।
कहाँ ते आया ? कहाँ जाओगे ? कर विचार मन मैला,
चटक रंग है चार घड़ी का, तामैं कहा परैला ?
राव-रंक की खबर न पाई, गये गुरु अरु चेला,
एकहि नाम राम का सच्चा, भाण कहे घर पैला ।।[2]

:२: कृष्णदास : :उपस्थित काल १८ वीं शती मध्य :

ये वस्तुत: अष्टछाप के कवि कृष्णदास से भिन्न हैं । सूरत में ये ताप्ती नदी के किनारे अश्वनी-आश्रम में रहते थे,[3] । कृष्णदास कबीरपंथी थे, जिन्होंने इसी पंथ के किसी चिदानंद नामक साधू से दीक्षा ली थी ।

हिन्दी में कृष्णदास रचित तीन ग्रन्थ हैं :-

:१: ज्ञान-प्रकाश । :२: यदुनंदन । :३: रघुवंशमणि ।

---

१. 'भजन सागर' भाग १-२, प्रकाशक-सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद और 'अध्यात्मक भजनमाला' भाग २, कहानजी धर्मसिंह, सं.१९५९ ।
२. 'भजनसागर', भाग १-२, पृ.५२८ ।
३. 'नाशा अश्वनीकुमार विराजत, सुरत श्वास सुखकारी ।'

कृष्णदास की भाषा सधुक्कड़ी हिन्दी है जिस पर सूरती गुजराती का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । 'रघुवंशमणि' तथा 'यदुनंदन' की रचना इन्होंने राम व तथा कृष्ण को वर्ण्य विषय बनाकर की है, किन्तु इन ग्रन्थों में कवि ने राम-कृष्ण का सगुण रूप समन्वित विराट निर्गुण रूप ही प्रस्थापित किया है ।[१] 'ज्ञान-प्रकाश' कवि का विशुद्ध ज्ञान-मूलक ग्रन्थ है जिसमें कवि ने दोहा तथा अरिल्ल छन्दों का प्रयोग किया है । ग्रंथ के प्रारम्भ में कवि ने गुरु वंदना की है :—

'परब्रह्म गुरदेव नर, चिदानंद अविनाश ।'

कवि रचित 'ज्ञान प्रकाश' की अन्य विशेषताएँ निम्न लिखित हैं :—

:१: भाषा का स्वरूप :— देवजू, बरनों, कहत हों, कहो, प्राणलो, ताके आदि ब्रजभाषा के शब्दों से संयोजित खड़ी बोली का रूप है ।

:२: गोपाल के 'ज्ञान प्रकाश' की भाँति ही इस ग्रंथ की रचनाशैली संवादात्मक है । अर्थात् कवि ने प्रस्तुत ग्रंथ की रचना प्रश्नोत्तर शैली में की है ।

:३: <u>मेकनदादा : : मृत्यु सं. १७८६ :</u>

श्री दूलेराय काराणी ने मेकनदादा को कच्छ का कबीर कहा है । मानवजीवन के गहन अनुभव, ज्ञान, वैराग्य एवं उपदेशों से पूर्ण कच्छी लोकभाषा एवं संस्कारों से रंजित मेकन की साखियाँ हृदय पर सीधा प्रभाव डालती हैं ।

---

१. 'रामचन्द्र को निरंजन जान हूँ, मानहुँ अज अविकारी ।' रघुवंशमणि ।
और,
'कृष्णप्रभु हुँ ऐसे जाणों, समज लियो मन मोरी ।' यदुनंदन ।

कबीर की तरह के मेकनदादा भी एक महान समाज सुधारक थे जिन्होंने राम और रहीम की एकता पर बल दिया ।[१] उन्होंने कहा कि सर्वत्र एक ही ईश्वर का वास है । पीपल में जो परमात्मा है, वही बावल : बबूल : में है । नीम में भी वही नारायण है जबकि खीजड़ा के पेड़ में अन्य कौन हो सकता है ।[२] दादा की वाणी में सामाजिक अन्धविश्वासों के प्रति विद्रोह है, समदृष्टि की भावना से पूर्ण सामाजिक एकता की पुकार है । समाज सेवा में ही उन्होंने सच्चे ईश्वर के दर्शन किये हैं ।

इनका उपस्थितकाल अट्ठारहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध माना जाता है । इनका जन्म कच्छ के नानी खोमड़ीया नामक गाँव में हुआ था । इनके पिता का नाम भट्टी हरदोल जी तथा माता का नाम पाबाबा था । अल्पायु में विरक्त होकर वे घर से निकल पड़े तथा मढ जागीर के महन्त गांगा राजा से उन्होंने गुरु मन्त्र लिया । किन्तु भाण की तरह मेकन भी एक जगह टिकना नहीं चाहते थे । अतः मढ छोड़कर गिरनार का रास्ता लिया । उनके सम्बन्ध में कहा जाता है :—

'मेका बेटा मछन्दर का, रामानन्द का कबीर,
आद अन्त फिरता रहा, फरता राम फकीर ।।'

कहा जाता है कि गिरनार की एक गुफा में छः मास तक अखण्ड तप करने पर दत्तात्रेय की जगह से उन्हें एक

---

१. 'हिन्दु जपे राम राम, मुसलमान चे अला,
मुंजो नाथ मेकण चे, बय घर भला ।।'— मेकनदादा ।

२. 'पिप्पर में पण पाण, नाय बावर में बेओ,
निम में ऊ नाराण, पोय कंढे में केओ ।।' — मेकनदादा ।

कामड़ प्राप्त हुई और संसार की सेवा करने का [redacted] आदेश मिला। अपनी साधना की पहली धूनी उन्होंने बिलखा में रमायी। बारह वर्ष तप करने के पश्चात् वे हरिद्वार की यात्रा के लिए निकल पड़े। वहाँ से लौट कर वे सिन्ध के फोक गाँव में आये। दूसरी धूनी उन्होंने जंगी में रमायी, जहाँ मोमायो पटेल जैसे कठोर पुरुष को भी अपने [redacted] उपदेशों से हरिभक्त बनाकर दादा ने उसे आडेसर में गायों की सेवा का भार सौंपा। दादा ने तीसरी धूनी लोडाई में १२ वर्ष तक रमायी। अन्त में वे प्रेमाबा नामक एक भक्त स्त्री के आग्रह पर ध्रंग में रुक गये। सैकड़ों स्त्री पुरुष दादा के परम शिष्य तो थे ही, लालिया नामक गधा और मोतिया नामक कुत्ता भी उनके अनन्य शिष्यों में से थे। 'रेगिस्तान के फरिश्ते' नाम से विख्यात मेकनदादा के ये दो पशु-शिष्य अपनी पीठ पर पखाल लादे रेगिस्तान के यात्रियों की प्यास बुझाने का कार्य करते थे। मनुष्येतर प्राणियों पर सन्त मेकन के प्रभाव और चमत्कार का यह एक बोधप्रद प्रसंग है। संवत् १७८६ आश्विन मास, कृष्णपक्ष चतुर्दशी, शनिवार को दादा ने ध्रंग में १२ शिष्यों के साथ जीवित समाधि ली उनमें [redacted] लालिया तथा मोतिया भी थे। उसी समय मोमायो पटेल ने आडेसर में सात सन्तों के साथ जीवित समाधि ली। दादा ने अपने पश्चात् अपना स्थान अरजण राजा को दिया।

दादा की वाणी में थोड़े में बहुत कुछ कह देने की अपूर्व क्षमता थी। एक बार अपने एक शिष्य को सीचड़ी बनाते देख उन्होंने कहा था—

'जब लग दीबी ऊफणे, तब लग सीफी नाहिं,
सीफी तो तब जानियें, जब नाचत कूदत नाहिं ।।

लोक व्यवहार के प्रतीकों द्वारा गूढ़ बात कहने में सन्त मेकन की वाणी का अभिव्यक्ति-कौशल प्रशंसनीय है। इस दृष्टि से उनकी कुछ अन्य साखियाँ दृष्टव्य हैं :-

'स्वारथ तां सौ को करे, परमारथ करे न कोय,
हथो छडे मसाण में, कुवाडो छडे न कोय ।।'

०० ०० ००

'सायर लहरू थोडीयु, घट में मणेरियु,
हिक्काडयु पुग्यु न थड मथे, त बइयु उपडियु ।।'

सन्त के मेकनकी हिन्दी रचनाएँ विरल हैं। उनकी भाषा में कच्छी, सिन्धी, गुजराती और हिन्दी का अपूर्व मिश्रण है।

:४: दीन दरवेश : : १८ वीं शती से १९ वीं शती पूर्वार्द्ध

ये मूल पालनपुर के निवासी तथा जाति के लुहार थे। ईस्ट इंडिया कम्पनी की एक सेना में ये मिस्त्री का काम करते थे। संयोगवश गोला लगने से इनकी बाँह कट गयी और कम्पनी सरकार ने इन्हें नौकरी से निकाल दिया।[१] वहीं से घर बार छोड़कर ये साधुओं के साथ भ्रमण करने लगे और अन्त में किसी नाथपंथी साधू बाबा बालानाथ को अपना गुरु बनाया,[२] जो गिरनार के निवासी थे।[३] दीन दरवेश ने यद्यपि अनेक सूफी फकीरों और वेदान्ती आचार्यों का सत्संग किया था किन्तु गुरु के आदेशानुसार उन्होंने स्वतन्त्र रूपेण अपने सिद्धान्त

---

१. 'संत-काव्य' पृ० ३९२।
२. 'सद्गुरु बाल किरपा कीन,
पाया दीन का घर दीन।'
३. 'संत कहत है दीन गुरु-स्थान गिरना।'

निश्चित किये और आजीवन उन्हीं का प्रचार करते रहे ।[1] इनके नाम पर चलाये गये एक पंथ : दीन दरवेशी पंथ : का उल्लेख भी मिलता है ।[2] इनके शिष्यों में पीरुद्दीन, बाबा फाजल, संत हुसेन खाँ, बाबा नबी, संतनुरुद्दीन आदि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है ।

दीन दरवेश की कुंडलियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । डॉ. बडथ्वाल ने इनके द्वारा रचित सवालाख कुंडलियों का अनुमान किया है । प्रसिद्ध इतिहासज्ञ महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के पास उनकी बानी ......का एक संग्रह है किन्तु उसमें संग्रहीत कुंडलियों की संख्या इसके शतांश भी नहीं है ।[3]

दीन दरवेश रचित कुंडलियों में जहाँ ब्रह्म-ज्ञान की स्पष्ट व्याख्या है वहाँ उनमें सरल जीवन, विश्व-प्रेम, सत्य-कथन -- तथा क्षणभंगुर संसार के प्रति बोधपूर्ण संदेश भी है । उनके वर्णन में अनुभव बोलता सा प्रतीत होता है । सत्-शब्द जितना अक्षुण्ण है उतना ही नश्वर यह संसार है इस बात को कवि ने इस तरह समझाया है :-

जितना दीसे थिर नहीं थिर है निरंजन नाम
ठाठ बाठ नर थिर नहीं, नाहीं थिर धन-धाम
नाहीं थिर धन-धाम, गाम घर हस्ती घोड़ा ।
नजर आत थिर नाहीं, नाहिं थिर साथ संजोड़ ।।
कहे दीन दरवेश, कहा इतने पर इतना ।
थिर निज मन सत-शब्द, नाहिं थिर दीसे जितना ।।

---

१. संत काव्य, पृ.३६२ ।
२. कबीर-सम्प्रदाय, किशनसिंह चावड़ा ।
३. हि.का.नि.स, पृ.८१ ।

उसी एक करतार के ज़िक्र : स्मरण: बिना जीव को कभी चैन नहीं मिल सकता ।[१] वह साँई तो घट घट में विराजमान है जिसका जलवा ही निराला है जो जीवरूपी नाव को खेनेवाला खाविंद है ।[२] काया तो बादल की परछाहीं की तरह है, जैसी आयी है वैसी ही चली जायगी ।[३] माया के मोह में जो भी फँसा अपनी बाजी हार गया । मूर्ख इन्सान यह देखते हुए भी अचेत रहता है कालरूपी बाज़ दिन में हज़ार बार झपट्टा मारता है ।[४] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इनकी वाणी अत्यन्त बोधप्रद एवं सरल है । भाषा खड़ीबोली के अधिक निकट है जिस पर पंजाबी तथा गुजराती का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है । उदाहरणार्थ —

१. 'बंदा कहता मैं करूँ, करहार करतार,
तेरा कहा सो होय नहिं, होसी होवण हार ।'

२. 'हिन्दू कहें सो हम बड़े, मुसलमान कहे हम्म,
एक मूँग दो फाड़ है, कुण ज्यादा कुण कम्म
कुण ज्यादा कुण कम्म, कभी करना नहिं कजिया।'

---

१. 'जिक्र बिना करतार के, जीव न पावत चैन'
२. 'साँई घट घट में बसे, दूजा न बोलनहार,
ब. देखो जलवा आपका, खाविंद खेवनहार ।'
३. 'माया माया कहत है, खाया खरच्या नाहिं,
आया जैसा जायगा, ज्यूँ बादल की छाहिं ।'
४. 'काल झपट्टा देत है, दिन में बार हजार,
मूरख नर चेते नहिं, कैसे उतरे पार ।'

:५: रवि साहब : : सं.१७८३–१८६० :

१९ वीं शती के गुजरात के उल्लेखनीय संतों में रविसाहब का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। ये तणछा गाँव के सूदखोर वणिक थे, जिन्हें भाण साहब के सदुपदेशों से[१] सांसारिकता से विरक्ति हो गयी और आगे चलकर यही 'रवजी बनिया' सन्त रविदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके पिता का नाम मनछाराम तथा माता का नाम इच्छाबाई बताया जाता है।[२] संवत् १८०६ के वर्षांतर में इन्होंने भाण साहब से दीक्षा प्राप्त की।[३] भाण साहब द्वारा रोपे हुए बीज को वस्तुत: अंकुरित एवं पुष्पित किया रवि साहब ने ही। शेरखी : बाजवा के पास : में गद्दी प्रस्थापित कर इन्होंने अपने ज्ञान का प्रसार किया। भाण साहब की तरह इनके शिष्यों की संख्या भी काफी थी। मोरार साहब इनके प्रिय शिष्यों में से थे। यही कारण है कि इन्होंने शेरखी छोड़कर मोरार के निवास-स्थान-जाम-खंभालिया में समाधिस्थ होने की अन्तिम इच्छा प्रकट की थी।[४]

शेरखी से खंभालिया जाते समय वांकानेर में अचानक बीमार पड़ जाने से रविसाहब वहीं पर संवत् १८६०

---

१. 'वाराही शहर लोहर वंश, प्रगटे भाण टालण फंस,
वाका बालक रविदास, अनमें कथ्यो दृढ़ विश्वास।'
–रवि साहब कृत 'चिन्तामणि' हस्तप्रत सं.६।२।२ डाही.पु.नडियाद।
२. भारत के सन्त महात्मा, पृ.७१८।
३. र.मा.स.वा, पृ.४।
४. वही पृ.१०।

मैं निर्वाण प्राप्त हुए । उनके मृत देह को मोरार साहब जाम खंभालिया ले गये जहाँ उन्हें समाधिस्थ किया गया । उनकी समाधि पर बब रामचन्द्रजी का मन्दिर बना हुआ है ।[१] रवि साहब ने कुल ७७ वर्ष की आयु प्राप्त की थी ।

इनके पदों में रवि, रवजी, रविराम, रविदास, रविसाहब आदि नामों की छाप मिलती है । इन्हों- ने गुजराती तथा हिन्दी दोनों में ही काव्य-रचना की है ।

रचनाएँ :

:१: चिन्तामणि : श्री दूलेराय काराणी ने रविसाहब रचित इस नाम की तीन रचनाओं का उल्लेख किया है : :१: बोध-चिन्तामणि :२: आत्म-लक्ष-चिन्तामणि । :३: राम-गुंजार चिन्तामणि। रवि साहब कृत 'चिन्तामणि' की एक हस्तप्रति मेरे देखने में आयी है जो डाह्यीलक्ष्मी पुस्तकालय, नडियाद में सुरक्षित है ।[३] ग्रंथ हिन्दी में है जिसके अन्तर्गत संत-समागम, वैराग्य, मोक्ष आदि पर विशेष भार दिया गया है । भाषा की दृष्टि से ग्रंथ की कुछ प्रारम्भिक पंक्तियाँ देखिए:-[४]

'सतगुरु के परताप से, खोजा पिंड ब्रह्मांड ।
परमसुन में परम तंत है, दरसा गहे निसान ।।
आज्ञा गुरु की पाऊँ, के गाथा प्रेम की गाऊँ ।
संगत साध की कीजे, के पियाला प्रेम का पीजे ।।'

अतः साक्ष्य के आधार पर ग्रंथ का रचना-काल संवत् १८२० बैठता है :-

---

१. र.भा.स.वा., पृ.१० ।
२. देखिए क.स.क., पृ.१५४ ।
३. हस्तप्रति, विवरण संख्या, ६।२।२, डा.पु. नडियाद ।
४. वही पृ.१ ।

'संवत् अष्टदस प्रमाण ।
बीसा वरस ने उनमान ।।
आसुमास पंचमी दीन ।
चिन्तमणी कही पुरण ।।'

:२: माणगीता : यह ग्रन्थ मूलत: गुजराती में लिखा हुआ है, किन्तु बीच-बीच में हिन्दी साखियों से युक्त है । 'माण-गीता' का पहला पद इस प्रकार है :-

मर्म मैटण भेद है, एसी गीता जाण ।
रवीदास अभेद अछेद है, अणीलींगी पद नीरवाण ।।१।।
अणलींगी पद जे अनुभवे, जाकु गुरुगम होय ।
रवीदास गुरु शब्द सैं, नीरंतर नजरे जोय ।।२।।

अन्तिम पद :-

'कर कौतक कल हुता सुपने सुता जोगी जोता मट-
गीया पोथा ।
आपे देख्या पार न पेख्या, धरणी जलथल रूप न-
रेखा पंडत पोथा ।।'

'माणगीता' के सम्बन्ध में स्वयं रविसाहब ने कहा है-

'एकवीस कडवा छवीस साखी,
गीता गायी ब्रह्म प्रकाश ।
आशे ऊपर अण चौपाई,
कथ्यो महा ब्रह्म वीलास ।।२।।
शास्त्रनु दृष्टान्त माहीं,
वैद गीता नी कही साख,
माहीं न्यारो नीरंतर खेले,
द्रष्टांत दीलमां दाख' ।।३।।[१]

---

१. र.भा.स.वा., पृ.३३ ।

:३: <u>मन: संयम :</u> प्रस्तुत ग्रन्थ गुजराती में लिखा हुआ है । आत्म संयम पर अपने विचारों को रविसाहब ने इस ग्रन्थ में वाणी दी है ।

:४: <u>पंचकोश प्रबन्ध :</u> यह ग्रन्थ उनके ज्ञान-गाम्भीर्य का द्योतक है। इसमें पंचकोशों का वर्णन है जो गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है । प्रश्नोत्तर के रूप में एक उदाहरण देखिए :१.

`शिष्य पुछे कर जोर, एक ऊपजी आशंका,
पंच कोश के मांहि, बंध्या राजा अरु रंका ।
ब्रह्मा इन्द्र महेश देव सबही अवटाया,
थावर जंगम आद, जीव पंचकोश बंधाया ।
कोश अरु कोश वशीरशा, ग्रशा कशा केही मांत,
सतगुरु सो नीश्ते करी, कहो दृष्टांत सीद्धान्त ।।[1]

<u>उत्तर :</u>

अन्न मनोमय कोश, कोश अरु प्राण वीज्ञाना,
अरु आनन्दमय कोश, ताहीं में सकल बंधाना ।
प्रथम अनहीते बंधे, वीश्व अरु वैराट,
रविदास सतगुरु कहे, अनन्त कल्पना ठाठ ।।

:५: <u>रवि-भाण प्रश्नोत्तरी :</u> सूरदास के `भ्रमरगीत` की शैली के आधार पर गोपी-उद्धव-संवाद को लेकर `रवि-भाण प्रश्नोत्तरी` लिखी गयी है । ब्रह्म-साधना ही प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रमुख विषय है ।[2] खडी बोली में योग-साधना को लेकर

---

१. र.भा.स.वा., पृ.१६६ ।
२. `अखंड उन्मुनी मुद्राए दीवस अने राती रे सतगुरु जु,
रविदास ब्रह्म निरख्या, मूल्या भ्रान्ति मारा गुरजू ।।-संतवाणी.,व.३,अंक ६,पृ ३२

लिखा गया एक पद दृष्टव्य है—

'देख दीलदार दी(ल)माही देदार कर,
नाभि के बीच निज नाम है ।
सुरत-नुरत शेरी सो जाल दे,
रदय कमल मन मार ग्रेहे ।
जलमल ज्योत अनहद बाजा बाजे ।
काम और करोध अ्रल अगन दहे ।
बैठीया तखत तब अदल बादशाही है,
ज्ञान गुरु गम से गैल है ।
दास रविराम अ्रल मगन महबूब
पोंचिया संत कोई सत है ।।'[1]

इस ग्रन्थ में रविसाहब ने 'बारहमासा' वर्णन भी किया है । भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों की बहुलता है ।

:६: <u>गुरु महात्म्य :</u> आशाराम मोरारजी कृत 'लीलामृत' में रविसाहब द्वारा रचित 'गुरुमहात्म्य' नामक एक छोटी-सी रचना का संकलन है । इस ग्रन्थ में उन्होंने अपने गुरु भाण साहब की महिमा का गुणगान किया है-[2]

'मेरा सतगुरु भाण है,
रविदास परमाण ।
oo oo
रविदास गुरु सहेजे मल्या,
देखत दीन - दयाल ।
चटकी दीनी शब्द की,
पल में भयो निहाल' ।।

---

१. संतवाणी, वर्ष ३ अंक ४, पृ.३२ से उधृत ।
२. 'लीलामृत' पृ.१ से १२ ।

गुरु महिमा—

'गुरु गोविन्द दो एक स्वरूपा,
नाम रूप गुन भेद अनूपा ।
गुरु अविचल पूरण पद-धामा,
गुरु स्वामी गुरु जग-विश्रामा'।।

६६ चौपाइयों तथा २१ साखियों में लिखा गया यह ग्रन्थ छोटा होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है । इनके द्वारा रचित 'बिमल सन्त-वाणी'[१] नामक एक अन्य ग्रन्थ का उल्लेख भी मिलता है । जिसमें कवि ने सन्त-महिमा का अपूर्व गुणगान किया है ।[२]

:७: साखियाँ : रवि साहब ने अधिकांश साखियों की ही रचना की है । इन साखियों को विविध अंगों में वर्गीकृत किया गया है । जैसे नाम महिमा को अंग, संत लक्षण को अंग, उत्तम नारी को अंग, अधम स्त्री को अंग, अजपा को अंग आदि। इन साखियों के विषय भी वही हैं जो सामान्यत: अन्य सन्त कवियों की साखियों में पाये जाते हैं । जीवन, जरा, यौवन, प्रेम, भक्ति एवं वैराग्य आदि उनके प्रमुख विषय हैं । इन साखियों में आध्यात्मिकता के साथ साथ सामाजिकता का संस्पर्श भी है । एक ओर इनमें जहाँ मोह माया को त्याग कर वैराग्य की ओर खींचने की उत्कंठा है तो दूसरी ओर मानव गुणों की महत्ता का प्रस्थान भी किया गया है ।

---

१. देखिए 'भारत के सन्त महात्मा' पृ.७१८ ।
२. देखिए 'फार्बस गुजराती सभा महोत्सव ग्रन्थ' पृ.३२२ ।

SRI HANSA MEHTA LIBRARY

:८: <u>स्फुट पद</u> : रविसाहब के सरल एवं गीतमय पद लोगों के कंठों से पखावज और मंजीरे की ताल पर स्वरलहरी बनकर आज भी फूट पड़ते हैं। इन पदों में लोक-हृदय बोल उठता है। इनमें छन्द-योजना की अपेक्षा ताल एवं लय को विशेष महत्त्व दिया गया है। भावाभिव्यक्ति की लाक्षणिकता इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। उनके एक पद की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :-

'घी का स्वाद ही जभ्या जाने,
क्यु कहे मीठा खारा।
कहे रविराम माण प्रतापे,
ईगम अगम अपारा।
लूण की पूतली गिर गयी जल मां,
क्यु कर निकसे बारा।'

उनके हृदय की मार्मिकता तो 'पिया' एवं 'पतिव्रता' के रूपकों में छलक पड़ती है —

'मैं पतिव्रता नार पिया की,
बाहेर कबहुं न जाऊँ।'

oo oo

अथवा—

'मैं पनिहारी राम की, छीलर जले न न्हाऊँ,
पड़दा तोड़ पियाडे पहोंचु, निरमल जल भरि लाऊँ।।'

कबीर की तरह रवि साहब की उलट बाँसियाँ भी चमत्कारपूर्ण, सचोट एवं बौद्धिक हैं। इनकी वाणी में एक ओर जहाँ पनिहारी, पिया, बालम, अनमे, खुमारी, प्रेम केरी लहेर आदि अनेक मधुर शब्दों का प्रयोग मिलता है वहाँ दूसरी ओर दार्शनिक चिन्तन की बात करते समय अकथ कहानी, अणिलिंगी, अलख, निरंजन, अभेद आदि

अनेक पारिभाषिक शब्दों के सहज दर्शन भी हो जाते हैं। साथ ही अरबी, फारसी[1] तथा पंजाबी के शब्दों[2] का इतस्ततः प्रयोग भी उनकी वाणी में दीख पड़ता है। उनकी इस वैविध्यपूर्ण वाणी में हमें कहीं भी साम्प्रदायिक द्वेषभाव अथवा संकुचित विचार धारा के दर्शन नहीं होते। उन्होंने सगुण एवं निर्गुण का सरस समन्वय किया था।[3]

रविसाहब निरांत एवं प्रीतमदास के समकालीन थे ऐसा उनके द्वारा लिखे गये कुछ पत्रों से प्रतीत होता है। ये पत्र इन सन्तों के जीवन-तथ्यों, प्रवाहों तथा विचारों के स्पष्टीकरण के द्योतक हैं। निरांत के एक पत्र से रवि साहब का तत्कालीन महत्त्व पहचाना जा [redacted] सकता है —

'रविराम ने शरणे गया, ते जन तो पारंगत थया।[4]

वस्तुतः रविसाहब एक पहुँचे हुए ब्रह्मज्ञानी थे, जिन्होंने उन्नीसवीं शती के समस्त मध्यभाग को अपनी प्रतिभा से जगमगाया था। इनकी वाणी में यौगिक साधना, तपस्या तथा अद्वैत ब्रह्म राम के नाम का चिन्तन है। जिस समय समस्त देश की राजनीति करवटें ले रही थी, रविसाहब की वाणी गुजरात के समस्त जनसमाज में आध्यात्मिक क्रान्ति पैदा कर सजग व्यक्तित्व का निर्माण कर रही थी। इन्होंने सत्य, प्रेम एवं शान्ति की वह भूमिका तैयार की जिसपर महात्मा गांधी ने देश की स्वतन्त्रता का बिगुल बजाया।

---

१. 'लोचन से लोहु चुवै, बीन देखे महेबूब, रविदास राती अखीया, खालक बीन नहीं खूब।
र.भा.स.वा., पृ.३०३।

२. 'बलाहुंदी सेज बिछावता, क्लीए कलियु नारुंदा,
सौंही जमीन पर लोटन लाग्या, कंकरे कोण बहारुंदा। र.भा.स.वा, पृ.३२।

३. 'रग रग राम रमि रह्यो, निरगुन अगुन के रूप,
राम श्याम रवि एक ही, सुन्दर सगुण सरूप।

४. श्री निरांत काव्य, पृ.१६४।

:६: देवा साहब : उप.काल सं.१८०० :

देवा साहब का नाम कच्छ के पहुँचे हुए सन्तों में से लिया जाता है। ये जाति के [illegible] क्षत्रिय तथा ... हमला गाँव के निवासी थे। इनके गुरु के सम्बन्ध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती, किन्तु इतना निश्चित है कि ये किसी पहुँचे हुए साधक के शिष्य रहे होंगे। कहा जाता है कि ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् विरक्ति होने पर ही इन्हें गुरु दीक्षा मिली थी।[१] बीस वर्ष की भरी जवानी में ये एक पुत्र तथा पत्नी को छोड़ कर वैरागी हो गये और हमला में 'चीन की गंगा' नामक नदी की मेड़ पर कुटिया बाँधकर बैठ गये।

देवा साहब के अन्तर-चक्षु अपने आप खुले थे तथा कविता का अनन्त [illegible] स्त्रोत भी हृदय की दीवारों को तोड़ कर फूट पड़ा था। इनके द्वारा रचित तीन अद्वितीय ग्रन्थ हैं —

१. राम सागर । २.हरि सागर । ३ कृष्ण सागर ।

'राम सागर' में निर्गुण ब्रह्म की साधना है। ज्ञान काण्ड पर लिखा गया यह अपूर्व ग्रन्थ है। 'हरि सागर' में ज्ञान गौण है और उपासना मुख्य है जिसमें नवधाभक्ति का सांगोपांग वर्णन किया गया है। उपासना काण्ड पर लिखा गया यह अद्वितीय ग्रन्थ है। 'कृष्ण सागर' में कहीं कहीं ज्ञान का पुट तथा सर्वत्र उपासना एवं भगवद् लीला का चित्रण मिलता है। इसमें 'कर्मकाण्ड'

---

१. दुलेराय काराणी' क.सं.क. पृ.८४ ।

की महिमा का गान है । अतः इन तीनों ग्रन्थों में ज्ञान, उपासना एवं कर्म की समीक्षा की गयी है । ` `राम सागर` से कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

`बाहिर नाए सो क्या भया, अन्तर मैल न जाई,
अन्तर मैल उतारिये, ज्ञान नीर में नाई ।[1]

०० ०० ००

`इह माया को फंद, एक कनक दुजी कामनी,
जीव जेहि मति मंद, यातैं छूटी ना सकें` ।[2]

वृहद काव्य दोहन भाग ५ में इनके १६ पदों तथा अध्यात्म भजनमाला भाग २ में इनके कुछ हिन्दी पदों का संग्रह हुआ है । इनके द्वारा रचित हिन्दी कुंडलियाँ भी भाषा एवं भाव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं ।

<u>शिष्य एवं प्रमुख गद्दियाँ :</u> हमला में देवा साहब की मुख्य गद्दी है । हमला की महिमा के विषय में एक दोहा प्रचलित है—

`हमला गंग गोदावरी, हमला है हरद्वार,
अरसठ तीरथ त्यां बसे, देवा के दरबार ।`

देवा साहब के चार प्रमुख शिष्य थे— जेठीराम : ज्येष्ठराम :, बेरोजी : बिहारीदास :, सेवाराम और कृष्णदास जिनमें जेठीराम पट्ट शिष्य थे । देवासाहब की मृत्यु के पश्चात् हमला की गद्दी इन्हीं को सौंपने का निर्णय किया गया, किन्तु जेठीराम इसके लिए तैयार नहीं हुए । अन्त में देवासाहब के पौत्र रामसिंह को गोद लेकर ये गद्दी पर बैठे और रामसिंह के बालिग होते ही

---

१. `राम सागर` पृ.२७ ।
२. `राम सागर` पृ.२६ ।

वाढाय चले गये । जेठीराम के भजन अत्यन्त भावपूर्ण हैं ।

हमला की गादी-परम्परा इस प्रकार है —

देवा साहब
।
रामसिंह
।
मोहनरामजी
।
पूर्णरामजी
।
मंगलरामजी
।
गंगारामजी

अन्य शिष्यों में बिहारीदास ने [redacted] वाढाय में, सेवाराम ने सिंध में तथा कृष्णदास ने कोटड़ी में इस पन्थ की गद्दियाँ प्रस्थापित कीं । बिहारीदास के बचपन का नाम बेरोजी था । इनका जन्म सं.१८०४ में वाढाय : कच्छ : में पिता मेघराज के घर हुआ था । इन्होंने पिंगल शास्त्र का भी अभ्यास किया था । 'कृष्ण बाल [redacted] विनोद' 'गुरु स्तुति' 'प्रस्ताविक कुंडलियाँ' तथा अनेक पद एवं भजन आदि की इन्होंने रचना की है । भाषा की दृष्टि से इनकी एक बोधप्रद कुंडली द्रष्टव्य है :—

'सिर पर जमरा फिरत है, ज्यों तीतर पर बाज,
सबके पीछे है लग्यो, हंस हरन के काज,
हंस हरन के काज, बधिक यह चहुँदिश धावे,
बिल्ली मूषक काल, निशी दिन यों ही खावे,

कह बिहारी कर जोर, चेत मन चंचल भमरा,
ज्यों तीतर पर बाज, फिरत यों सिर पर जमरा ।`

संत विहारीदास की शिष्य परम्परा इस प्रकार है —

बिहारीदास : सं.१८०४...:
|
क्षेमसागर : सं.१८४५ :
|
ईश्वरराम : सं.१८४५-१६५३ :
|
लालराम : सं.१६१३ — ७१ :
|
ओधवदास : सं.१६४५-२०१३ :

उपर्युक्त प्रणालिका के सन्तों में ईश्वरराम, लालराम तथा ओधवदास जी `की हिन्दी-वाणी उपलब्ध होती है । इनके पद तथा भजन अत्यन्त सरल एवं हृदय स्पर्शी हैं ।

:७: खीम साहब : : उप.काल. सं.१८२६ :

जैसा कि इनके विषय में पहले ही कहा जा चुका है कि ये भाण साहब के पुत्र तथा रापर : कच्छ : की गद्दी के अधिकारी थे । भाण सम्प्रदाय के अनुयायी इन्हें`दरिया पीर`का अवतार मानते हैं । क्योंकि इनके नयनों में `नूर का दरिया` दिखायी देता था[1], इसलिए इनके अनुयायी इन्हें `खलक दरिया खीम साहब` भी कहते हैं । कहा जाता है कि भाण साहब की विशेष अनुकम्पा इन पर न होकर रविसाहब पर रहा करती, इससे इनका हृदय खिन्न सा रहा करता था, परन्तु जिस समय इन्हें रविसाहब के योग तथा ज्ञान की ऊँचाई

१. `दर्शन देखी भया मन मगना, सहैजे सून समाना,
नैनुं आगे नूर निरखिया, नहिं मोटा नहिं नाना ।`
— खीम साहब ।

का पता चला, इनका सम्पूर्ण दर्प लग गया ।[1]

इनके द्वारा रचित 'चिन्तामणि' नामक एक हिन्दी ग्रन्थ बताया जाता है, जिसे इन्होंने संवत् १८२६ के 'चैत्र सुदी पूनम को पूर्ण किया था ।[2] इनके कुछ पदों का संग्रह अध्यात्म भजनमाला भाग १-२ में भी मिलता है । इनकी वाणी में मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा तथा बाह्य कर्म काण्डों के प्रति खण्डन[3] तथा घट में ही गुरु को प्राप्त करने की अन्तर्मुखी साधना का मण्डन हुआ है ।[4] इनके पदों में गुरु के प्रति अपार श्रद्धा एवं विशुद्ध योग-साधना के दर्शन होते हैं । इनकी वाणी कबीर की विचार-धारा से पोषित है । कहीं-कहीं तुलसीदास की तरह सियाराम-के स्मरण की उत्कटता भी दीख पड़ती है—

'जिन मुखसे सियाराम न सुमरे,
तिन मुखमें तो धूल परी रे...:टेक :
धिक तेरो जन्म जीवन तेरो धिक है,
धिक धिक मनुष्य की देह धरी रे,
जीवत तात मूवे नहीं तेरा,
क्यु जनम्यो तु पाप करी रे ... जिन[5]

तो कहीं आत्मा रूपी हीरे को प्राप्त कर योगरूपी कमाई को भरने की तीव्र उत्कंठा भी है—

'अब तो आत्म हीरला पाया,
हरिचरणे चित्त लाया ।...टेक.

---

१. क.स.क., पृ.१६८ ।
२. फा. गु.स.म.ग्र., पृ.३२२ ।
३. 'तप, तीरथ और देवी देवता, वेद, कुरान विस्तारा,
पीर पैगम्बर सिद्ध और साधक, ई उरका वहेवारा कोई सरजन हारा ।'
— खीम साहब ।
४. 'गगन मंडल में करले वासा, वां है जोगी लहेरी,
सद्गुरुए मुने सान बतायी, जाप अजपा केरी ।'
५. श्री. भजन सागर भा. १ पृ. ७५ ।

घर मै माल अमुलख भरिया,
जुगते जोग कमाया ।
जनम सुधारण सतगुरु भेट्या,
नवला घाट घड़ाया ।।[१]

खीम साहब द्वारा रचित उपरोक्त पदों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होगा कि उनमें अनुभूति की तीव्रता के साथ भाषा की सरलता और संगीतात्मकता भी विद्यमान है ।

:८: प्रीमतदास : : मृत्यु सं.१८५४ :

गुजराती सन्त साहित्य में अखा के पश्चात् जितनी लोक प्रियता प्रीतमदास को मिली उतनी संभवत: किसी अन्य को प्राप्त न हो सकी, उनकी लोकप्रियता का एकमात्र कारण उनका पद लालित्य है । इनके जन्म तथा जीवन के विषय में पर्याप्त मतभेद है । स्व.इच्छाराम ने इनकी आयु ७२ वर्ष की बतायी है[२] तथा श्री.के. एम.झवेरी ने इनकी ७२ वर्ष की अवस्था में इनकी पत्नी का देहावसान सूचित किया है ।[३] इस आधार पर प्रीतमदास की आयु ७२ वर्ष से भी अधिक ठहरती है । 'सीहोल मन्दिर' के एक वृद्ध महन्त के कथनानुसार प्रीतमदास का देहान्त ७५-८० वर्ष की अवस्था में हुआ बताते हैं । अन्त: साक्ष्य के आधार पर 'भगवतगीता' के अन्त में प्रीतमदास के शिष्य नारणदास ने लिखा है कि 'संते अढार चोपना, वैसाख वद १२ ने दिवसे मध्यान ने

१. क.सं.क. पृ.१७० ।
२. बृ.का.दो., भाग ३ ।
३. गु.सा.मा.स्तम्भो, श्री.कृष्णलाल झवेरी ।

काले बावोजी सधाम पधारा छे ते जाणजो ।'[1] अर्थात् प्रीतमका देहावसान संवत् १८५४, वैसाख वदी १२ अपराह्न हुआ था । इन प्रमाणों के आधार पर हम प्रीतमदास का जन्म संवत् १७७५ से १७८० के बीच निश्चित कर सकते हैं । यद्यपि उनके जन्म के विषय में कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होता । इच्छाराम ने उनके पिता का नाम रघुनाथदास बताया है जबकि प्रीतमदास के मन्दिर : संदेसर : से उपलब्ध पोथी में उनके पिता का नाम प्रतापसिंह और माता का नाम तेजकुंवरबा मिलता है । प्रीतमदास मूलतः बावला के निवासी थे जो संवत् १८१७ के आसपास संदेसर पधारे थे । संदेसर को हम अतः उनकी जन्मभूमि नहीं मान सकते ।

प्रीतमदास के विवाहित तथा अंध होने के सम्बन्ध में भी अनेक मत मतान्तर प्रचलित हैं । श्री.के.एम.झवेरी ने उत्तरावस्था में इनका अन्ध होना बताया है ।[2] जबकि प्रीतमदास के मन्दिरों में ऐसी मान्यता चली आ रही है कि वे जन्मान्ध थे । वस्तुतः उनके ग्रन्थों की बेशुमार अशुद्धियाँ भी उनका अन्ध होना सूचित करती हैं । 'संदेह के बदले 'संधे' अविनाश के बदले 'अविन्यास' 'स्पर्श' के बदले 'प्रसप्रस' 'अवश्यमेव' के बदले 'अश्वमेव' आदि उच्चारण की ऐसी भूले हैं जो लिपिकों के द्वारा सहज ही हो जाया करती होंगी ।

श्री.के .एम.झवेरी तथा स्व.इच्छाराम दोनों ही प्रीतम को विवाहित मानते हैं, किन्तु अन्तः साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य दोनों आधारों पर इस कथन की सत्यता सिद्ध

---

१. प्री.वा., पृ.३५० ।

२. गु.सा.मा.स्तम्भो, श्री.कृष्णलाल झवेरी ।

नहीं होती । प्रीतम क्योंकि त्यागी थे अतः अपने ग्रन्थों में जगह जगह उन्होंने अपने को 'बावा' कहा है । इनके मन्दिरों में आज तक यह परम्परा चली आ रही है कि इनका महन्त तथा साधू वही हो सकता है जो त्यागी हो । प्रीतमदास की गुरु प्रणालिका भी त्यागी साधुओं की है ।

<u>गुरु</u> — प्रीतमदास की गुरु-प्रणालिका इस प्रकार है—

रामानन्द स्वामी : संवत् १३५६ :
|
कुबाजी स्वामी : संवत् १६११ के आसपास :
|
करसनदास
|
आत्माराम
|
भाईदास
|
बापुजी — प्रीतमदास ।

उपर्युक्त प्रणालिका वस्तुतः [redacted] खण्डित है । स्व.इच्छाराम तथा झवेरी दोनों ही ने गोविन्दराम को प्रीतमदास का गुरु बताया है जो रामानंदी साधू थे । किन्तु प्रीतमदास के समकालीन रविसाहब ने शेरखी से उनके नाम जो पत्र लिखा था, उसमें प्रीतम के गुरु का नाम 'बापु' है ।[1] स्वयं प्रीतम ने भी 'बापु' पर बल दिया है ।[2] गुरु प्रणालिका को देखते हुए 'बापुजी' प्रीतम के गुरु भाई लगते हैं । संभव है भाईदास प्रीतम के दीक्षा गुरु हों और ज्ञान की ज्योति जगाने वाले 'बापु' रहे हों ।

---

१. 'साचा सतगुरु वरीआ बापु, साची कीधी सेवा,
दसधा भक्ति पुरण प्रगटी, अंतर टल्या अहमेवा ।' प्री.वा., पृ.३८ ।
२. प्री.वा., पृ. ३५० ।

रचनाएँ :

`प्रीतमदास नी वाणी` पृ.४० पर प्रीतमदास रचित ग्रन्थों की एक लंबी तालिका इस प्रकार दी है —

:१: सरसगीता :सं.१८३१:	:२: ज्ञान-कक्को :सं.१८३२:
:३: सोरठ राग ना महीना :सं.१८३८ :	:४: ज्ञान-गीता :सं.१८४१:
	:६: साखी-ग्रन्थ :स.१८४५:
:५: धरमगीता :सं.१८४१:	:८: ज्ञान-प्रकाश :
:७: एकादश स्कन्ध :सं.१८४५:	:१०: प्रेम-प्रकाश :स.१८४७:
:६: ब्रह्मलीला :सं.१८४७:	:१२: भगवद्गीता :सं.१८५२ :
:१०: विनयदीनता :सं.१८४८:	

तथा सत्यभामा नो गरबो, गुरु महिमा, भक्त नामावलि, नाम महिमा, कृष्णाष्टक, महीना, तिथि, वार, छप्पा, चौपाइयाँ, पद, धोल, आदि का विपुल संख्या में लिखने का उल्लेख मिलता है । स्व.इच्छाराम ने प्रीतमदास के पदों की संख्या १५०० के आसपास बतायी है ।[१] इन पदों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं —

:१: ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य से सम्बन्धित पद

:२: श्रृंगारिक पद, जिनमें कृष्ण-लीला के पदों का समावेश है । वसन्त, होली, दानलीला, रास आदि के पदों का समावेश इसीके अन्तर्गत हो जाता है ।

पदलालित्य की दृष्टि से प्रीतम के पद बेजोड़ हैं । शान्त तथा श्रृंगार रस की धारा से समन्वित प्रीतम ?में हमें ज्ञान एवं भक्ति का समान बल मिलता है । वस्तुत:

१. बृ.का.दो. भाग ३ ।

प्रीतम की प्रीतिमय भाषा में अद्भुत माधुर्य है । वह अखा के विचारों की तरह कहीं भी बोझिल नहीं हो पायी है । अखा में ज्ञान की खुमारी है । उन्हों- ने ब्रह्म को आरम्भ से ही अद्वैत के रूप में देखा है जबकि प्रीतम में माया के बल को शमित करने के लिए परमेश्वर के अनुग्रह की कामना है । प्रीतम द्वारा रचित हिन्दी रचनाएँ इस प्रकार हैं —

१. गुरु महिमा[1] भाग २ ।
२. भक्त नामावली[2] ।
३. ज्ञान-प्रकाश का पहला पद[3] ।
४. ब्रह्मलीला[4] ।
५. साखी-ग्रन्थ[5] ।
६. विनय-स्तुति की अन्तिम चौपाइयाँ[6] ।
७. विनय-दीनता[7] ।
८. फुटकल-पद ।
९. सप्तश्लोकी गीता[8] ।

'साखी ग्रन्थ' प्रीतम का विशाल ग्रन्थ है, जिसमें २४ अंग तथा ६३८ साखियाँ हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ उन्होंने संदेसर में ही पूर्ण किया ।[9] 'ब्रज लीला' की भाँति प्रीतम ने

---

१. प्री. वा. पृ.३४ ।
२. वही पृ.५१ ।
३. 'हरि गुरु संत कृपा करें, हरे सकल संदेह,
पुरुष आदि परमात्मा, तासु प्रगटे स्नेह ।' प्री. वा.पृ.५६ ।
४. प्री.वा., पृ.६७ ।
५. प्री.वा., पृ.१०० ।
६. वही पृ.१५१ ।
७. वही पृ.१५१ ।
८. वही पृ.३५१ ।
९. वही पृ.१४२:२३ ।

'ब्रह्म लीला' का वर्णन किया है जिसमें उन्होंने मुक्ति को यशोदा, भक्ति को राधा तथा ब्रह्म : आनन्द स्वरूप : को नंदरायजी का रूपक दिया है।[१] भाषा की दृष्टि से यह ग्रन्थ अपूर्व है। साखियों एवं पदों में प्रीतम का ब्रह्म ज्ञान भी अपूर्व है। इन्होंने योग साधना[२] जीव, माया;[३] वैराग्य[४]; भक्ति[५]; विरह[६]; आदि का खुलकर वर्णन किया है।

:६: धीरा : : सं.१८०६-१८८१ :

धीरा का जन्म सावली-गोठडा : बड़ौदा: बारोट : भाट : जाति में हुआ था। इनके पिता का नाम प्रताप बारोट तथा माता का नाम देवाबा था। धीरा विवाहित थे। इनकी पत्नी का नाम जतनबा बताया जाता है तथा यह कहा जाता है कि इनका गृहस्थ-जीवन सुखी नहीं था। बचपन में किसी अध्यारू के पास विद्याभ्यास के हेतु जाया करते, किन्तु वहाँ मन रमा नहीं। ठोकर खाते-खाते युवावस्था के किनारे पर पहुँचकर, अर्थात् सत्रह वर्ष की अवस्था में महिसागर के किनारे किसी बनवासी साईं का समागम हुआ, तथा वैष्णव कुल-धर्म को छोड़कर वे रामानंदी पंथ में दीक्षित हुए।[७]

---

१. प्री.वा, 'ब्रह्म लीला', पृ.६६।
२. प्री.वा पृ.११०।
३. वही पृ.१२७: २०।
४. वही पृ.११६: ७।
५. वही पृ.११३।
६. वही पृ.१२०: ७,८,११।
७. रा.रा.सुरेश दीक्षित : फा.गु.स.त्रैमासिक अंक २, १६४०, पृ.१७३ :

कृतित्व :

प्रा.का.मा.ग्र.२३,२४,२५ मैं प्रकाशित धीराकृत निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख मिलता है —

:१: स्वरूप अने प्रश्नोत्तर मालिका

:२: आत्म बोध । :३: ज्ञान कक्को

:४: गुरु धर्म :५: शिष्य धर्म

:६: योग मार्ग :७: मतवादी ।

ये सभी रचनाएँ गुजराती मैं हैं । धीरा की कुछ हिन्दी वाणी, प्रा.का.मा.ग्र २४ मैं संग्रहीत है । वृ.का.दो.भाग ३, मैं धीरा का एक उत्कृष्ट हिन्दी पद मिलता है जो इस प्रकार है —

'दम का भरोसा मत कर भाई, साधन करंदा साई,
साधन करंदा साई मै वारी वस्या । .... टेक ।
पाव पलक की खबर न जाणे, करे काल की आश,
शीर पर जमड़ा जड़प रहे, हो गया जंगल वास ।
हस्ती घोड़ा माल खजाना, कोई काम नहीं आवे,
अचेत होकर कब बैठा हो, पीछे थी पस्तावे ।
सद्गुरजी के शरण जाई, चरणे शीश नमावी,
आधीन होकर नीशदिन रहेना, जम की त्रास मिटाई
जेत्रा आश जाने कु भाई, रहेने कु थीर नाहीं,
सद्गुरु धीरा भगत बतावे, रोगी भगवान मलाई ।[१]

यद्यपि धीरा रचित किसी स्वतंत्र हिन्दी ग्रन्थ का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु उनके हिन्दी गुजराती पदों की संख्या विपुल है । अनुमान है कि धीरा ने २५०००

---

१. बृहद काव्य दोहन, भाग ३, पृ.७६५ ।

पद लिखे थे थे जिनमें से अभी तक बहुत ही कम प्रकाश में आ पाये हैं । धीरा का शिष्य-वर्ग विशाल था । कहा जाता है कि ये अपनी रचनाएँ लिख लिख कर बाँस की नली में बन्द करके नदी में बहा दिया करते थे और इस प्रकार दूर दूर तक इनकी रचनाओं का प्रचार हो जाता था ।

धीरा की काफियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं । ये काफियाँ प्राय: अंग्रेजी के सोनेट की तरह १४ पंक्तियों की हैं । इन काफियों का प्रधान स्वर आत्म-ज्ञान है । अखा ने जिस तरह गुरु शिष्य संवाद की रचना की है, उसी प्रकार धीरा ने भी अपनी विचार-सरणि को 'प्रश्नोत्तर-मालिका' में माला के मनकों की तरह पिरोया है

धीरा विभिन्न मत मतान्तर तथा सम्प्रदायों के विरोधी थे, इसीलिए इन्होंने मन्दिर, मस्जिद और देव मूर्तियों की अवहेलना की है । इन्होंने वेदान्त का सामान्य स्वरूप कम से कम पारिभाषिक शब्दों में जन सामान्य की पहुँच के अनुरूप सरल भाषा में स्पष्ट किया है । माया को मोह के रूप में स्वीकार कर धनमोह, विद्यामोह, पुत्रमोह, स्त्रीमोह कीर्ति मोह आदि स्थूल विभाग कर अन्त में 'धीरा ने उसे अनिर्वचनीय कहा है ।' 'अवलवाणी' में धीरा ने परमतत्व के विषय में कहा है कि तल के नीचे जैसे तेल रहता है और काष्ठ के नीचे जैसे अग्नि रहती है, उसी प्रकार विश्व ; प्रपंच के स्फटिक रूप में परमतत्त्व स्थित है । धीरा के अनुसार मन एक भ्रमणाङ्ग है । तृष्णा मन को पवन-चक्की की तरह फिराती है । काशी, गया, गोदावरी, जगन्नाथ अथवा डाकोर में त्रिभुवन का ठाकोर नहीं है । वह तो धीरा

के अन्तर में विराजमान है । राजा को खुश करके वह द्रव्य-भंडार भर सकता था, अमीर को खुश करके वह हाथी घोड़े पा सकता था, परन्तु गुरु को रिझाकर वह मोक्ष-पद को पा सका है । धीरा शुद्धाद्वैतवादी होते हुए भी आत्मा के अस्तित्व को मानने वाले हैं । उनके विचार बौद्ध अनात्मवादियों की तरह नहीं हैं ।

श्री कौशिकराम मेहता ने धीरा की वाणी के विषय में ठीक ही कहा है कि 'धीरा की वाणी सरल, स्वाभाविक, स्वच्छन्द और वीरत्व से पूर्ण, बेधक किन्तु मृदु, कठोर होकर भी मधुर, हथौड़े और पानी के प्रवाह तथा तोपगोलों में भी सूराख कर देनेवाली वाणी है ।[1] इसलिए धीरा की वाणी 'धींगडमल धीरा की वाणी' के रूप में प्रसिद्ध है । इनके शब्दों में कहीं-कहीं मनोहर चित्र उभर आते हैं ।

:१०: <u>भीकम साहब :</u>

वागड़ के रामवाव नामक गाँव में निम्न जाति : ढेड़-गौर : में इनका जन्म हुआ था । हरिजन होने से इन्हें खीम साहब का शिष्य बनने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । लोगों ने इनपर चरण पादुकाएँ तक उछालीं, किन्तु इनके हृदय की पवित्रता एवं नम्रता को देख खीम साहब ने जनमत को ठुकरा कर इन्हें अपना शिष्य बना लिया इन्होंने चितौड़ जाकर विशाल मढ़ी तैयार की और वहाँ रहकर रवि भाण सम्प्रदाय का

---

१. जयन्ती व्याख्यानो, पृ.८६ : धीरा अने तेमनी कविता : श्री.कौशिकराम मेहता ।

प्रचार करने लगे ।[1] खीम साहब के प्रति इनकी श्रद्धा अटूट थी ।[2] इसीलिए इन्होंने अपने शिष्यों से अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट की थी कि उनके शरीर-त्याग के पश्चात् उनके देह को रापर में खीम साहब की समाधि के पास ही समाधिस्थ किया जाय । संवत् १८५८ में इन्होंने जीवित समाधि ली ।[3] इनके पद अत्यन्त मार्मिक हैं । भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से इनका एक पद यहाँ उद्धृत करना समीचीन होगा—

'मान सरोवर हंसा भीलन आयो जी !
इन्द्री का बांध्या अवधूत, जोगीन के ना एजी !
जब लग मनवो न बांध्यो मेरे लाल
लाल मेरा दिल मां लागी वैरागी !
खीम केरा चेला अवधूत, त्रीकमदास बोलियाजी !
साधुड़ा ने जुगति मां रेना मेरे लाल,
लाल मेरा दिल मां लागी वैरागी ।[4]

---

१. क.सं.क., पृ.१८७ श्री दूलेराय काराणी ।
२. 'सनमुख डेरा रे, साहेब मेरा, सनमुख डरा रे,
बाहीर देख्या, भीतर देख्या, देख्या अगम अपारा रे,
है तुभ माही, सुभत नाही, गुरु बीन घोर अंधेरा,
अंधेरा, अंधेरा ।।सनमुख।। र.मा.स.वा, पृ.४४४ ।
३. र.भा.स.वा, पृ. ४४२ ।
४. र.मा.स.वा., पृ.४५२ ।

:११: मोरार साहब :

ये मारवाड़ स्थित थराद नामक रजवाड़े के राजपुत्र थे। वाघेला राणावंश में इनका जन्म संवत् १८१४ में हुआ था।[१] इनका पहला नाम मानसिंह था जिन्होंने रविदास की बोधप्रद वाणी से प्रभावित होकर विवाह करने से इन्कार कर दिया। अपनी विधवा माता की एकमात्र इच्छा को ठुकरा कर[२] ये वैरागी हो गये। कहा जाता है कि इनके आग्रह से वशीभूत होकर स्वयं इनकी माता इन्हें रविदास के पास ले गयीं और जामनगर में भेष दिलवाया।[३] कुछ लोगों के अनुसार संवत् १८३२ में इन्होंने रविसाहब से शेरखी में ही दीक्षा ली।[४] कुछ भी हो भेष लेने के बाद ये मानसिंह राजकुंवर से भेषधारी मोरार बन गये तथा जाम खंभालिया में गुरु-आज्ञा से गद्दी स्थापित की। रविसाहब की विशेष कृपा इन पर थी। संवत् १६०५ में इनका समाधिस्थ होना बताया जाता है।

मोरार साहब की वाणी में प्रेम, पीड़ा एवं करुणा का भाव सहज ही उमड़ पड़ता है। कवि की विरहानुभूति में आत्मा की ब्रह्माभिमुखता का एक उदाहरण दृष्टव्य है :

'मेरे प्रीतम चले परदेश जीवन में कैसे जीवुं ?
आवे न जावे कोई खबर न लावे,
कोवन को कहावुं संदेश ?

१. क.सं.क., पृ.१७१।
२. 'मैया मारो मनवो हुवो रे विरागी,
मारी ले तो भजन मां लागी रे।' — मोरार साहब।
३. 'सोरठी संत वाणी' — फवेरचन्द मेघाणी।
४. र.मा.स.वा. : भूमिका : जबकि श्री.काराणी ने संवत् १८३५ दिया है।
: देखिए — क.सं.क., पृ.१७२ :।

साचु कहो तो मैं संग चलुंगी,
हाँ रे मैं दिल किया दरवेश ।
नाहीं कहो तो मैं निश्चय मरूंगी,
हाँ रे मैं ऐसो लियो उपदेश ।`[1]

कवि को इसी विरहानुभूति में रहस्यानुभूति होती है । मन का वैराग्य एवं गगन-ध्वनि के प्रति आकर्षण ही कवि के प्रेम-पंथ का प्रथम सोपान है ।[2] सद्गुरु का शब्द-बाण लगते ही उसके हृदय कपाट खुल जाते हैं । उस अमर पुरुष के स्थान पर पहुँच कर कवि रहस्य की प्रतीति इस प्रकार कराता है :—

`मध मंडप में श्वेत सिंहासन, लाल भंवेर जड़ानारे,
ता पर राजे सच्चिदानंद सद्गुरु, कोटि कोटि
शशियल माना रे ।
अनंत सखी तहाँ अनंत सखा है निरखी नैन सरानारे ।
हास विलास रास रंग रचियो, मान तान गुलतानारे।
अगम अगोचर अद्भुत लीला, नेति नेति निगम निरानारे
रज मोरार रवि के चरणे, सेजेसेज समाना रे ।`

संक्षेप में मोरार साहब की वाणी काव्यत्व से पूर्ण सरल एवं हृदय स्पर्शी है ।

:१२: गवरीबाई : : संवत् १८१५—१८६५ :

ये मूल डूंगरपुर की वड़नगरा नागर थीं ।[3] इनके माता पिता के नाम अविदित हैं किन्तु इनकी एक बहिन थीं जिनका नाम चंपु था ।[4] कहा जाता है कि गवरीबाई

---

१. र.भा.मो.वा., पृ.७२, पद २५ ।
२. `मारी लगन गगन धून लागी रे,
मनवो वैरागी रे वैरागी ।`
३. चौ.गु.सा.प. की रिपोर्ट ।
४. देखिए—`गवरी कीर्तन माला` पृ.२७ ।

का विवाह पाँच-छः वर्ष की अल्पायु में ही हो गया था और विवाह के एक वर्ष बाद ही इनके पति का देहान्त भी ।[१] माता-पिता ने पुत्री के वैधव्य-भार को कुछ हल्का करने के हेतु गवरीबाई को पढ़ा लिखा कर चतुर बनाया । इनके बढ़ते हुए ज्ञान एवं यश से प्रभावित होकर राजा शिवसिंह : सं.१७८६-१८४२ : ने उनके लिए एक भव्य मंदिर बंधवाया था ।[२] अपनी उत्तरावस्था में ये काशी चली गयीं थी ।[३] इससे पूर्व वे कुछ समय तक मथुरा और ब्रिन्दावन ठहरी थीं । संवत् १८६५ चैत्रशुक्ल नवमी को काशी में यमुना तट पर गवरीबाई ने समाधि ली । इनके गुरु के सम्बन्ध में अधिक ज्ञात नहीं, गुजरात में इसी नाम की एक और गवरीबाई हो गयी हैं जो वल्लभीय वैष्णव थीं ।

गवरीबाई के फुटकल पदों की संख्या डॉ.मोतीलाल मेनारिया ने ६१० बतायी है ।[४] 'गवरी कीर्तन माला' में भी गवरीबाई के कुल ६१० पद संकलित हैं, किन्तु संकलनकार ने इसे अपूर्व संग्रह बताया है ।[५] चौ.गु. सा.प. की रिपोर्ट के अनुसार इनके नीति तथा उपदेश के पदों की संख्या ६५२ है । इन पदों की भाषा गुजराती, राजस्थानी तथा हिन्दी है । फरारे, कठणा, करणा, मत, मेवासी, ठगण आदि मारवाड़ी शब्दों का पुट भी इनकी भाषा में यत्र-तत्र दिखायी दे जाता है । हिन्दी में लिखे गये इनके पदों की संख्या तीन-सौ से ऊपर बैठती है

---

१. तीसरी गुजराती साहित्य परिषद-लेख 'गुजरात नी स्त्री कवियो'
—लेडी विद्यागौरी नीलकंठ ।

२. 'गवरी कीर्तन माला' पृ.२६ ।
३. गु.सा.मा.स्त., पृ.१७७-श्री.कृष्णलाल झवेरी ।
४. 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' पृ.२०३ ।
५. 'देखिए — गवरी कीर्तन माला' पृ.२७६ ।

निर्गुण के साथ साथ इन्होंने सगुणभक्ति के पदों की रचना भी की है जिनमें सर्वत्र मीरां की-सी तन्मयता दीख पड़ती है । उदाहरणार्थ :-

होरी खेले मदन गोपाल ।
मोर मुकुट कट काछनी आछे चंचल नैन विशाल ।[1]

गवरीबाई के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता एक नारी-हृदय की अटल आस्था है :-

प्रभु मोकु एक भरोसो तिहारो ।
तुम समान मेरे और न दूजो, सकल भुवन निहारो ।[2]

इनकी साधना का प्रथम सोपान सगुण परक है जबकि पर्यवसान निर्गुणभक्ति में हुआ है । श्री.के.का.शास्त्री ने इन्हें गुजरात की ज्ञानाश्रयी कविता लिखने वाली कवयित्रियों में सर्व प्रथम स्थान दिया है । ऐसा लगता है कि गवरीबाई की कविता पर सन्तमत तथा कृष्णभक्त कवियों की कविता का समानान्तर प्रभाव पड़ा था । उनके द्वारा रचित तिथियां एवं वार तथा अनेक पदों में शरीर और आत्मा[3]; ब्रह्म और जीव, मन और माया[4]; का शान्त एवं मनोहर झरना अविरल बह उठा है । अखाकृत `अखेगीता' की झांकी तथा पदों की झलक गवरीबाई के पदों में हमें प्रत्यक्ष रूपेण दिखायी देती है । उदाहरणार्थ —

---

१. `गवरी कीर्तन माला' पृ.५५, पद ११७ ।
२. वही पृ.२५१, पद ५५८ ।
३. `घट भीतर गिरधारी पाया, सुख-सागर घट में गोविन्दो,
माईरी ये देह में दीपक जरेरी । —गवरीबाई
४. ` मोरे मन गंगा प्रगटी है भाइ, अडसठ तीरथ तन भीतर पाइ ।
अब मटकबे नहिं जाइ रे , भरमगुफा बिच ज्योति कु जोई ।।'
— गवरीबाई

अखा :—

'ज्ञान घटा चढ़ि आई अचानक ज्ञानघटा चढ़ि आई ।
अनुभव जल बरखा बड़ी बुंदन कर्म की कीच रेलाई ।।[१]

गवरीबाई :—

'ज्ञानघटा घेरानी अब देखो,
सतगुरु की किरपा भइ मुज पर
शब्द ब्रह्म पहचानी' ।[२]

तुलनीय :—

'अज शिव वाको पार न पावे
सो हरि अहीर के घर चोर चोर।'
— गवरीबाई

'ताहि अहीर की छोहरिया,
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावे ।'
—रसखानि

:१३: कैवलपुरी : : सं.१८१५—१९०५ :

ये मूल उदयपुर के निवासी थे । चालीस वर्ष की अवस्था में उमरेठ आकर बस गये और अन्तिम समय तक वहीं रहे । इनका जन्म संवत् १८१५ के आसपास तथा तथा निर्वाण संवत् १९०५ माना जाता है । राजवंशी कुल में जन्म लेने के कारण तथा बाल्यावस्था में चारण एवं भाटों के संसर्ग से इनकी भाषा पर चारणी प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

संवत् १८४० में ईडर के खोखानाथ के अखाड़े में आकर इन्होंने सैजपुरी अथवा सैजापुरी से गुरु दीक्षा ली । उसी समय से ये पूर्ण वैरागी बन बैठे और गुरु

---

१. 'अक्षयरस' पृ.९८, पद ११ ।
२. 'गवरी कीर्तन माल' पृ.२४७, पद ५३१ ।

के समाधिस्थ होने पर इन्होंने अपने नाम से गद्दी प्रस्थापित की । इनके नाम के अखाड़े ईडर, डाकोर, चाटण, उमरेठ आदि स्थानों पर हैं । ६० वर्ष की आयु में इन्होंने समाधि ली । इनके शिष्यों में कल्याणपुरी, मोजपुरी तथा कुबेरदत्त आदि का नाम लिया जाता है । कहा जाता है कि कुबेरदत्त को महात्मा केवलपुरी के २०० भजन कंठाग्र थे । उनके मुख से सुना हुआ हिन्दी का एक भजन देखिए जो प्राचीन काव्यमाला ग्रन्थ २ में प्रकाशित है —

'शुन घर शेहेर शेहेर घर बस्ती,
दम जागे तन सोता है,
लाल हमारे हम लालन के पे,
दम जागे तन सोता है ।... टेक
एसी धुन में रेना जोगेसर,
बंकनाल रस पीना है,
बंकनाल रस पीओ जोगेसर,
बंकनाल रस पीना है ।

oo oo

ध्रुवे पिया प्रहलादे पिया,
पीवे लछमन बाला है,
दास केवल ने ऐसा पीना,
एक नाम की आसा है ।'

ये पूर्णतः अभेद ब्रह्मज्ञानी थे । द्वैत उनके मन था ही नहीं ।[१] यहाँ तक कि 'कृष्ण-लीला' में भी उन्होंने अद्वैत का ही निरूपण किया है ।[२] केवलपुरी ने पदों

---

१. 'मनवा मेरा मया मगन, गगन लगन धुनि गावता है,
बुंदनाद सिंघासन बैठे, बाजा छत्रीस बजावता है ।'

२. 'गोलोक के पार गोलोक गाजते,
कृष्ण स्वामी रूप भूप कहावे ।'

के साथ साथ कक्का, बारह-मासा, सातवार आदि की भी रचना की है । इनकी भाषा हिन्दी-गुजराती मिश्रित है । इनके द्वारा रचित गुजराती पदों में भी हिन्दी और राजस्थानी के प्रत्यय एवं विभक्ति चिह्न मिलते हैं । हिन्दी में इनके द्वारा रची हुई कतिपय गद्य रचनाएँ उपलब्ध होती हैं ।

:१४: त्रिविक्रमानंद : : सं.१८१६—१८७६ :

ये जंबूसर के औदीच्य ब्राह्मण थे ।[1] बचपन में ये साधुओं के अखाड़ें में जाया करते जिसके प्रभाव से अनायास ही इनके मन में वैराग्य जाग उठा । कहा जाता है कि १५ वर्ष की अवस्था में इनका पाणिग्रहण संस्कार किया गया जहाँ विवाह-मंडप में 'सावधान' की पुकार सुनते ही ये गठ-बन्धन तोड़ काशी की ओर चल पड़े । किसी आनन्दराम शास्त्री के सम्पर्क से इन्होंने कौमुदी का अभ्यास किया था । काशी से ये पुनः सूरत पधारे जहाँ इन्होंने अपने जीवन की उत्तरावस्था व्यतीत की ।[2]

रचनाएँ :

त्रिविक्रमानंद रचित अनेक हिन्दी-गुजराती ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है ।[3] इनकी हिन्दी रचनाओं में सवैया, कवित्त, धोल तथा उत्कृष्ट कोटि के पदों की संख्या विपुल है । भाषा खड़ी बोली के अधिक निकट है जिसमें गुजराती, पंजाबी, ब्रज, अरबी-फारसी आदि विभिन्न भाषाओं के शब्दों की पंचमेल खिचड़ी है ।

---

१. फा.गु.म.ग्रं., पृ.३२२ ।
२. राणाभक्तो, पृ १४३ ।
३. प्रा.क.ते.कृ., पृ.७८-७९ ।

भाषा की दृष्टि से इनकी कतिपय पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :-

१. `मैं देख्या दिलदार तेरा ख्याल समजतें
तुं आदी निरगुण सगुण भया समजतें ।`[१]

२. `सुनबे सयाने मन मेरा, इश्क लागा लागा लालसु ।`[२]

:१५: संत निर्मलदास : : संवत् १८२२-१६३५ :

ये सूरत के प्रभावशाली सन्तों में से एक थे । इनके पिता का नाम बालाजी तथा माता का नाम पार्वतीबाई था । संत निर्मलदास पहुँचे हुए साधक थे जिन्होंने अपनी प्रथम धूनी दांडी वल्ला में रमायी । इसके पश्चात् अपने प्रिय शिष्य प्रभुदास के आग्रह पर ये सूरत पधारे जहाँ अन्तिम समय तक रहे तथा सं.१६३५ भादों वदी १, सोमवार को इन्होंने सूरत में जीवित समाधि ली ।[३]

सूरत के अन्य संतों की भाँति इनकी वाणी पर भी सूरती प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । इनकी भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है । कहीं कहीं ब्रजभाषा का पुट भी दिखायी दे जाता है । भाषा की दृष्टि से इनकी कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं —

`संत मतवाला रे, रामरस पीवता रहे ।`[४]
00 00 00
`सचराचर व्यापी रहे, देखा तो कहीं खाली नहीं ।`[५]
00 00 00
`जब गुरु शब्द कियो परकाशा,
तबसें ज्ञान भयो मन में रे ।`[६]

---

१. अ.भ.सं., भाग-१ ।
२. वही पद २८६ ।
३. `राणा भक्तो` पृ.११६ ।
४. `अध्यात्म भजन माला` भाग २, पृ.१३६ ।
५. वही पृ.१३६ ।
६. वही पृ.१३७ ।

हिन्दी में इनके द्वारा रचित ज्ञानमूलक बारहमासा-वर्णन विशिष्ट रचना है जो निश्चय ही गुजरात की श्रेष्ठ ज्ञान-बारहमासियों में से एक है । इन्होंने ब्रह्म-साक्षात्कार का अनुभूत आनन्द सर्वत्र प्रकट किया है । शब्द-ब्रह्म, नाम-स्मरण तथा गुरु की महत्ता का प्रतिपादन निर्मलदास की वाणी की सबसे बड़ी विशेषता है

संत निर्मलदास के अनेक शिष्य थे किन्तु उन सभी में प्रभुदास का नाम विशेष उल्लेखनीय है । प्रभुदास की हिन्दी-वाणी की हस्तप्रतियाँ दाँडी-वल्ला के वयोवृद्ध संत जमनादास के पास सुरक्षित हैं । इन्होंने भी नाम की महत्ता का प्रतिपादन किया है ।[1]

:१६: वस्तो विश्वम्भर : : उपस्थित काल सं.१८३१ :

गुजरात में वस्तो नाम के प्राय: दो व्यक्ति हुए । एक हैं, वस्तो डोडियो : उप.काल.संवत् १६२४ : जो बोरसद अथवा वीरसद के लेउवा पाटीदार थे और दूसरे हैं वस्तो विश्वम्भर : उप.काल. संवत् १८३१ : जो खंभात के पास सरकपुर पारे के निवासी थे । कुछ विद्वानों ने इन्हें एक होने की संभावना प्रकट की है[2]; तथा कुछने भिन्न होने की[3]; किन्तु निश्चित रूप से किसीने कुछ नहीं कहा । नवीन शोध खोज के आधार पर अब यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि वस्तो विश्वम्भर वस्तो डोडियो से नितान्त भिन्न हैं ।[4] ये वस्तुत:

---

१. 'मैं दीवाना नाम का, मोहे पीव मिलन की आस ।
अब तो मिलिहो जायके, जहाँ गुरु निर्मलदास ।।' -प्रभुदास ।
२. देखिए- 'साहित्य प्रवेशिका'-हिंमतलाल अंजारिया पृ.२१ ।
३. 'कविचरित' भाग १-२, पृ.३२३ ।
४. डॉ.योगीन्द्र त्रिपाठी : लेख विशेष: २१ वीं साहित्य परिषद की रिपोर्ट

खंभात-निवासी थे जो सरकपुर पारे में रहते थे ।[1] आज भी उस जगह पर उनकी समाधि बतायी जाती है । नरसी मेहता की तरह ये भी अपनी भाभी से त्रस्त होकर जीवन दिशा बदलने वाले थे । पढ़ने में कुशाग्रबुद्धि न होने के कारण भाभी से कटु वचन सुनकर ये घर त्यागकर चल दिये । कहा जाता है कि रामानंद-सम्प्रदाय के किसी विश्वम्भरदासजी से इनका समागम हुआ, तथा उन्हीं से दीक्षा ग्रहण की थी । इनके पदों में वस्तो के साथ 'विश्वम्भर' नाम संभवत: इसीलिए संलग्न है । इन्होंने अपने गुरु की स्तुति में एक छोटी-सी रचना 'अमरपुरीगीता' भी लिखी है । इसमें वस्तो के शिष्य किसी 'विश्नुदास' का उल्लेख भी मिलता है । वस्तो ने हिन्दी तथा गुजराती दोनों में काव्य रचना की है । इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं :—

गुजराती रचनाएँ : :१: वस्तुविलास ।
:२: अमरपुरीगीता ।
:३: वस्तुगीता ।
:४: मास ।
:५: कक्का ।
:६: तिथि ।
:७: गरबी ।
:८: प्रभातियाँ ।
:९: पद ।

हिन्दी रचनाएँ : :१: साखीग्रन्थ ।
:२: गुरुगीता ।
:३: मंगल्ल ।

---

१. 'गुजरात मध्ये खंभात गाम,
सरकपुरमाहीं छे निजधाम ।'

:४: धोल ।

:५: फुटकल पद ।

वस्तो ने कुल मिलाकर २६४१ साखियाँ लिखी हैं जिन्हें ८४ अंगों में विभक्त किया गया है ।[1] इनके हिन्दी पदों की संख्या ३०० से ऊपर बैठती है । ये पद विभिन्न राग रागिनियों में रचे गये हैं । इन पदों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विषय के अनुरूप इनमें विविध रागों की योजना की गयी है । रागों के अनुरूप विभिन्न गुच्छों में वस्तो ने ६३ व धोल भी लिखे हैं । इससे प्रतीत होता है कि उन्हें संगीत का विशिष्ट ज्ञान था । इन्होंने राग विहाग[2] व केदार[3] में मिथ्या वे भेषधारी तथा भाँड-भवैयों की खुलकर भर्त्सना की है । यथा—

'बुन का एक ढीमर बनाया,
केहे समुद्र का थाहा लावु ।
जे पीयाल्लोमोती लेर-फेर,।
पीछा माह्या आवु ।
ऐसी बात कभु नां नीपजे,
सुघरा समजे साने ।
नुघरा तो हां-हां कहावे ।'

वस्तो ने स्पष्ट शब्दों में यह कहा है कि ऐसे भेषधारी लोग इन्द्रियों के आहार करने वाले, पागल का ढोंग बनाकर घर घर पेट भरनेवाले और तोते की तरह रटी हुई बातें मुँह से कहने वाले होते हैं, जो मन के काले होते हैं । वस्तो तथा अखा में वस्तुगत, भावगत तथा

---

१. 'छव्वीससें एकतालीस साखी बोल्या सिद्ध,अक्षरे अक्षरे मुक्तदाता पूरणपद की विध ।
—साखी ग्रन्थ ।

२. वस्तोकृत पद १८ ।

३. वही पद १२१ ।

कलागत अपूर्व साम्य मिलता है । अन्त: एवं बहि:साक्ष्य के आधार पर भी ये अखा-प्रणालिका के सन्त प्रतीत होते हैं । यथा :—

१. वस्तोकृत सभी अप्रकाशित रचनाएँ अखा मन्दिर से उपलब्ध हुई हैं ।
२. `अखा` नाम का श्लिष्ट प्रयोग इनकी रचनाओं में जगह जगह मिलता है ।
३. इनकी पोथियों में अखा प्रणालिका के लक्ष्मीदास, गोपालदास, नरहरि आदि का उल्लेख मिलता है ।
४. इन्होंने `अखेगीता` की भाँति `वस्तुगीता` `गुरुगीता` तथा `अमरपुरीगीता` की रचना कड़वाबद्ध की है ।
५. अखाजी एवं उनकी प्रणालिका के परवर्ती सन्तों द्वारा प्रयुक्त अनेक विशिष्ट शब्दों का प्रयोग वस्तो की रचनाओं में भी हुआ है । बावन बाहर, नुगरा सुगरा, ढीमर, गुरु गोविन्द, झाकमझोल आदि इसी प्रकार के विशिष्ट ~~प्रयोग के~~ शब्द प्रयोग हैं ।
६. हिन्दी कवियों की ज्ञानाश्रयी परम्परा का अनुसरण करती हुई इनकी एक रचना `मंगल्ल` भी है, जिसमें आठ आठ पंक्तियों के दस मंगल गीत हैं । ज्ञानाष्टक परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हमें इसमें दीख पड़ती है । प्रत्येक मंगलल के अन्त में साखी है । धीरा के `गोविन्दरस` की भाँति वस्तो ने इसमें `अन्तररस` का प्रयोग किया है जो अपने में विशिष्ट प्रयोग है । बिल्कुल अखा के `अक्षयरस` की तरह ।

७. 'ब वस्तावाणी' के गुटके में एक शिष्य ने इस प्रकार की 'वस्ता प्रणालिका' प्रस्तुत की है —

माधवानंद
।
गरीबानंद
।
लक्ष्मीदास
।
गोपालदास
।
नरहरदास
।
कूबाजी
।
प्रलाददास
।
अमरदास
।
विश्वम्भरदास
।
वस्तादास
।
विश्नुदास

'प्रस्तुत प्रणालिका की प्रामाणिकता संदिग्ध ही है, किन्तु इतना अवश्य प्रतिभासित होता है कि वस्तो गोपाल और नरहरि की परम्परा के ज्ञानी-कवि हैं। इन्होंने भी दादू की भाँति सहज-साधना पर भार दिया है :—

'ना हम नाचे ना हम गावे,
ना हम तान मेल्लावे।
ना हम पोथी पढ़े पंडीत की,
सेहेज्य अमर पद पावे।'

—वस्तोकृत पद १५:१२० ।

कवि का कहना है कि— 'मैं स्तुति पूजा किसकी करूँ ? किस भाषा में और किसके आगे ?[1] साधना भी कैसे करूँ ? सभी तो उसका दिया हुआ है। तन-मन उसीकी देन है। लक्ष्मी उसके चरणों में अर्पित करें ? किन्तु, लक्ष्मी तो उसकी अर्द्धांगिनी है। नामरूप का धारणकर्ता भी वही है, अन्न जल भी उसी के हाथ में है। वही दाता है और वही भोक्ता है। अतः श्रीचरणों में समर्पित करने योग्य मेरे पास है ही क्या ?'[2] सहज की साधना में देह-दमन अथवा काया-क्लेश का कोई काम नहीं। यहाँ शास्त्र ज्ञान भी थोथा है। हठयोग की साधना की कवि ने पुष्टि की है किन्तु वह इसे साधना की अन्तिम सीढ़ी नहीं मानता। वस्तो के शब्दों में हठयोग तो साधन को [illegible] शुद्ध करने की प्रतिक्रिया है, ऐसी 'गगन गुफा' में गुरु को देखने का यह एक प्रयास है।[3] वस्तो के पद एवं साखियों में निस्सन्देह ज्ञान के साथ रसात्मकता का अपूर्व समन्वय हुआ है। काल के विराट मुख का वर्णन कवि ने कितने सुन्दर शब्दों में किया है[4] :—

'एक दाढ़्य आसमान में, एक लगी पाताल,
छोटो मुख ए है नहीं, है बड़ो मुख—काल।'

उपनिषद के 'पूर्णमिदं पूर्णमादाय' को कवि ने स्पष्ट भाव प्रवण शैली में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :—

'पूरण पूरण के प्रेम से, पूरण पूरण की छोल,
वस्ता विश्वम्भर स्वयं भरा, एक ही भकमभोल।'[5]

---

१. वस्तो कृत पद, ४:११७।
२. 'समरपण सुं करूँ लेइने, मुजमें काइना माहारू।' पद—४:१२०।
३. वस्तो कृत पद—२०।
४. अंग चेतावनी को।
५. साखी ग्रन्थ, अंग चेतावनी को—२०।

प्रेम के निरूपण में कवि ने संयोग एवं वियोग की गहरी अनुभूति के साथ आत्मा का तदाकार कर लिया है ।[१] कवि ने विरह को वर्षाऋतु की तरह `विरहऋतु` कहा है ।[२]

अभिव्यक्ति के क्षेत्र में वस्तो वस्तुत: अखा की कोटि का ही ज्ञानी-कवि है जिसकी भाषा अखा की तुलना में अधिक सरल एवं बोधगम्य है ।

:१७: कुबेरदास : : जन्म संवत् १८२६ :

इनका जन्म कासोर और अजरपरा के बीच : जिला खेड़ा : `सैर` नामक तालाब के पास हुआ था । कबीर की तरह इनके विषय में भी यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि इन्होंने जंगल में अचानक बालक स्वरूप धारण किया । सैर-स्थान पर अब भी इसकी साक्षी में एक छोटा-सा मन्दिर विद्यमान है । ऐसी मान्यता है कि सीसोदिया क्षत्रियवंश के किसी घर में इनका लालन-पालन हुआ था । ओड़ गाँव : जिला खेड़ा : के श्रीकृष्ण स्वामी महाराज से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की । इन्होंने सारसा में `कुबेर-पंथ` का प्रवर्तन कर कैवल-ज्ञान का सन्देश दिया ।

रचनाएँ :

आध्यात्मिक ज्ञान से भरपूर कुबेरदास के प्राय: १८ ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं :-

---

१. `मेरे मन कछु और है, लोगों के मन और
पियु विजोगे कामिनी, बसे कोण से ठोर ।`- अंग विरहीजन को, साखी- ८ ।

२. `विरह बिना हरि ना मले, कीजे कोटि उपाय,
माली सींचे वृक्षकुं-ऋतु विण फल ना थाय ।` वही, साखी -१६

१. सुकृत चिन्तामणि ।
२. स्वाचार पत्रिका ।
३. हंस तालेव : ज्ञानगीता :
४. विज्ञान सकल मणिदीप ।
५. विश्वभ्रम बिध्वंस ।
६. अगाध गति ।
७. अद्वैत—द्वैत नवेद चिन्तामणी ।
८. विश्वबोध चोसरा ।
९. ज्ञानभक्ति-वैराग्य निरूपण ।
१०. तिथिग्रंथ ज्ञान शिरोमणि ।
११. शिक्षापत्री ।
१२. पंचम स्वसमवेद ।
१३. भवतिमिर भास्कर ।
१४. परम सिद्धान्त प्रणव कल्पतरु ।
१५. कैवल प्रकाश ।
१६. गुरु महिमा ।
१७. अगाध बोध ।
१८. भजन, यजन उपासना विधि ।

इसके अलावा कुबेरदास रचित फुटकल पद, रेख्ता, तिथि, ककहरा, गरबी, उमंग, उल्लास आदि मिलते हैं । इनकी भाषा का स्वरूप अपरिष्कृत है । उदाहरणार्थ 'सुकृत चिन्तामणि' से कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :—

'ऊँ' परम सकृत सामृत पत,
नीजके बल करुणेश ।
एक अखंड स्वराज जेहन के,
स्वयं प्रकास सघेस ।।१।।
तेही पत ने बीज सृष्ट रची जब,
बोहोत जतन कर जासे ।।

तीनकी साहाय करन सूर सरजे,
ईन्द्र चन्द्र रवी तासे ।।२।।[१]

परब्रह्म-दर्शन में इनकी शैली विविध दृष्टान्तपूर्ण तथा तर्क-सम्मत है । 'हंस-तालेव' 'स्वाचार-पत्रिका' 'सुकृत-चिन्तामणि' आदि इनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं । 'हंस-चालेब' का दूसरा नाम 'ज्ञानगीता' भी है जो ५२ अंगों में विभक्त एक बृहद रचना है । इसकी योजना साखी एवं रेख्ता छन्दों में की गयी है । विषय की दृष्टि से इसके अन्तर्गत हिन्दू-मुस्लिम दोनों पक्षों के रस्म-रिवाजों की चर्चा करते हुए कवि ने बाह्याचारों की व्यर्थता सूचित की है तथा सच्चे कैवल पद का बोध कराने के हेतु ब्रह्म-निरूपण किया है । छः अंगों में विभक्त 'स्वाचार-पत्रिका' में कवि ने सम्प्रदाय के साधु-सन्त, महन्त और हरिजनों के आचार-नियम प्रतिपादित किये हैं । 'सुकृत चिन्तामणि' में कवि ने सर्व प्रथम संसार की उत्पत्ति का वर्णन किया है तथा अन्त में सन्त आचार-विषयक बोधपूर्ण पदों की रचना की है । ऐसा प्रसिद्ध है कि महात्मा छोटम प्रारंभ में कुबेरदास के लिपिक रह चुके थे जो कुबेरदास के ग्रन्थों की प्रतिलिपि करते-करते एक दिन स्वयं महात्मा बन गये । प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्त में छोटम की कतिपय गुजराती गरबियाँ संकलित हैं जिनमें कवि ने कुबेरदास के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा प्रदर्शित की है ।[२]

कुबेरदास के अधिकांश पद उपदेशपूर्ण हैं जिनमें कविने ज्ञान, वैराग्य, आत्मप्रतीति, आचार विचार तथा शब्द-

---

१. 'सुकृत चिन्तामणि' हस्तप्रति ११।१, डा.पु., नडियाद ।

२. 'छोटम साहब कुबेर क्रीपा जने करी,
ते नरने तो छे ठरवानो गमजो ज्ञान ।' हस्तप्रति ११।१, डा.पु. नडियाद ।

आराधना पर विशेष भार दिया है। इस दृष्टि से कुबेर का एक पद देखिए —

'ज्ञान की गुंज अबूझ न बूझत,
जीव दशा लेइ डोले हो ।
विचरण व्रेहणी रेहेणी नर जैसे,
ज्ञान-कपाट न खोले हो।।
त्याग-वैराग औरन कु देखावे,
अन्तर माया का घ्याना हो ।
हँसा होड करी मुख बोले,
करणी का गसमाना हो ।।×
करत कथा नित पाठ सीव को,
त्रष्णा गाठ नव छूटे हो ।
कहे कुबेर सत सबद समझ बिना,
पकर पकर जम लूटे हो।।'[1.]

:१८: निरांत : संवत् १८३६—१९०२ :

समस्त गुजरात को एक सूत्र में बाँध लेने वाली अखा से लेकर धीरो तक की ज्ञान श्रृंखला में निरांत की वाणी एक अविच्छेद्य कड़ी है। इनका जन्म करजण तालुका के अन्तर्गत देथाण गाँव में संवत् १८०३, गोहिल वंशीय राजपूत कुटुम्ब में माना जाता है।[2.] डा.मुन्शी ने इनका समय सन् १७७० ई. से १८४६ ई. अर्थात् संवत् १८३६ से १९०२ के बीच माना है,[3.] तथा इन्हें जाति का पाटीदार कहा है।[4.] इनके पिता का नाम उमेदसिंह तथा माता का नाम हेताबा था।

---

१. हस्तप्रति ११।२, डा.पु. नडियाद ।
२. निरांत काव्य —
३. Gujarat & Its' Literature - Page 258.
४. -do- Page 264. : प्रा.का.मा.भाग.१० में भी इन्हें पाटीदार कहा गया है। देखिए—भूमिका :

सात वर्ष की अवस्था में गाँव की पाठशाला में इन्हें पढ़ने के लिए बिठाया गया । बचपन से ही ये कथावार्ता के शौकीन थे तथा स्वभाव से अत्यन्त स्नेही एवं मिलनसार थे । कणफट में किसी रामानंदी-साधू के पास इनकी अधिक उठक बैठक बतायी जाती है । 'निरांत-काव्य' में इसी साधू को इन्हें गुरु-मन्त्र देने वाला भी बताया गया है । जनश्रुति के अनुसार निरांत हर पूर्णिमा को हाथ में तुलसी लेकर डाकोर जाया करते थे । कहा जाता है कि रास्ते में किसी मुसलमान ज्ञानी ने अपने उपदेशों से इन्हें सगुणोपासना से निर्गुण-साधना की ओर अभिमुख कर दिया[१]; यद्यपि इस जनश्रुति को कोई ठोस साम्प्रदायिक आधार नहीं मिल पाया है । तथापि श्री गोवर्द्धन त्रिपाठी ने इस किंवदन्ती पर विशेष भार दिया है ।[२] प्रा.का.मा. भाग १० में किसी मियाँ साहब को इनका गुरु बताया गया है ।

निरांत ने दो विवाह किये थे, जिनसे १२ सन्तानें थीं । इन्होंने अपना सबसे पहला उपदेश मियागाम के निवासी भीखाभाई मियावत को दिया/इनकी प्रसिद्धि

---

१. निरांत के ५३ पद विशुद्ध सगुण साधना के मिलते हैं : देखिए-निरांत-काव्य पृ.६४२ : जिनकी भाषा गुजराती है ।

२. One of these Niranta, got his philosophy even from a Mohomedan these people present the various shades of Akho, Kabir and the like, and their poems generally consist of detached and isolated songs' - G.M.Tripathi- Classical poets of Gujarat and their influence, page 63.

दिन-दिन बढ़ती गयी और इस प्रकार इनके शिष्यों की संख्या पूर्व में डभोई से रेवातट, पश्चिम में कावी से देहेज, माडभूत और मूवा तक उत्तर में महिसागर से लेकर दक्षिण में सूरत तक फैल गयी । बड़ौदा में इनका निवास सामान्यत: प्रेमजी भगत के यहाँ हुआ करता । कहा जाता है कि वनमाली कहानजी चौक : बड़ौदा : में एक बार उनकी भेंट स्वामी सहजानंद से हुई थी । उनके बीच शास्त्रार्थ भी हुआ किन्तु दोनों ही शान्त चित्त के थे अत: निराकरण न निकलने पर दोनों चुपचाप लौट आये । निरांत के समकालीनों में प्रीतमदास, सहजानंद और कुबेरदास का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है, जो अपने-अपने संप्रदायों की स्थापना में लगे हुए थे । निरांत को भी इच्छा हुई और अपने सामने ही निरभिमानी, सन्त-सेवी, ज्ञान के मुमुक्षु तथा सरल प्रकृति के १६ शिष्यों को चुनकर उन्हें निरांत-संप्रदाय की गद्दी स्थापित करने का आदेश दिया । इन शिष्यों ने गुरु की माला तथा चाखड़ी : चरण पादुका : लेकर अपने-अपने घरों में गुरु — गद्दी स्थापित की । निरांत की शिष्य परम्परा में प्रथम १६ शिष्यों के नाम इस प्रकार हैं—

नरेरदास, दयालदास, गोविन्दराम, भक्ताराम, शामदास, मायबाजी, खुमानसिंह, माधवराम, खुशालदास, बावाभाई, बापू साहब गायकवाड़, भीखाभाई, रामदास, बणारसी माँ, भक्ताराम : वाघोडिया : और केशवदास ।[१] इनमें गोविन्दराम तथा बापू साहब गायकवाड़ का नाम विशेष उल्लेखनीय है । बापू साहब ने बड़ौदा में तथा गोविन्दराम ने सूरत में गद्दी स्थापित की। गोविन्दराम के चार शिष्य थे —

१. 'निरांत-काव्य' पृ.२१ ।

रामदास, गणपतराम, रणछोड़दास और वासजीभाई । गणपतराम के हिन्दी पदों का संग्रह भजन-सागर, भाग १ में मिलता है,[१] जो योग-साधना के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं । `षट-चक्र की लावणी` में षटचक्रों तथा ब्रह्मरंध्र तक पहुँचने की स्थितियों का वर्णन किया गया है ।[२] उनके अन्य पदों में आत्म-दर्शन को विशेष महत्त्व दिया गया है । कवि ने आत्मा को जल की मछली कहा है, जो भव-सागर में गोते खा-खा कर भटक गयी है ।[३] इनके पदों की भाषा हिन्दी-गुजराती मिश्रित है ।[४] `निरांत-काव्य` में इन्हें मेवाड़ा सुथार : बढ़ई : कहा गया है । चौथी साहित्य परिषद् की रिपोर्ट में सीसोदरा : भरुच जि.: निवासी किसी गणपतराम का उल्लेख मिलता है, जिसे ब्राह्मण जाति का बताया गया है, तथा उसके द्वारा रचित `द्वादश-मास` `वेदान्त के स्फुट पद` `होरियाँ` आदि रचनाओं का विवरण भी दिया गया है । यह कहना कठिन है कि ये दोनों सन्त-कवि एक ही हैं । `निरांत-सम्प्रदाय` के सन्त कवि गणपतराम ने अपने पदों में अपने गुरु `गोविन्द` का स्पष्ट उल्लेख किया है । इस सम्प्रदाय के अन्य शिष्यों में बापू साहेब गायकवाड़ तथा रणछोड़दास के शिष्य अरजण भगत : अर्जुन भक्त: की हिन्दी वाणी का विशेष महत्व है । निरांत के शिष्यों की संख्या काफी थी जिसमें तीन शिष्याओं : गिरिजाबाई, वणारसी बाई, जमनाबाई: का नामोल्लेख भी मिलता है जो थोड़ी-बहुत कविता करना जानती थीं ।[५]

---

१. `भजन सागर`: स.सा.व.का.: भाग १, पृ.१७७ ।
२. वही पृ.१७७-१७९, पद १६०,१६१ -१६६ ।
३. वही पृ.२३३-२३४ ।पद २४५ ।
४. वही पृ.२३३-२३५ ।पद २४३—२४९ ।
५. प्र.का.मा., भाग १०, पृ.२—३ ।

कृतित्व :

निरांत की कविता शान्तरस से ओतप्रोत है । इन्होंने सांख्य तथा योग से सम्बन्धित पदों की रचना की है, जिनमें यम, नियम तथा उनके भेद, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि इत्यादि पर खूब प्रकाश डाला है । सांख्य-दर्शन के पदों में जड़ और चैतन्य का स्वरूप निरूपित कर निरांत ने बताया है कि इनके ब सम्मिलन से ही जगतादि का आविर्भाव हुआ है । चैतन्य पुरुष और जड़ प्रकृति के योग से महत् तत्त्व उत्पन्न हुआ और महत् तत्त्व में से अहंकार की सृष्टि हुई । यह अहंकार तीन प्रकार का है १. तामस : जिससे पंचमहाभूत और उनके कार्य पैदा हुए : २.राजस : जिससे इन्द्रियां पैदा हुईं : ३.सात्विक : जिससे बुद्धि निर्मित हुई : इसके पश्चात् निरांत ने सूक्ष्म-शरीर, कारण-शरीर, जाग्रत आदि अवस्थाओं का भी वर्णन किया है ।[1] इन्होंने कथाओं तथा विभिन्न अवतारों को अपने काव्य का विषय बनाया है । अवतारवाद का खण्डन कर इन्होंने कहा है कि एक ही ब्रह्म को जानने से मुक्ति मिलेगी । वस्तुत: ये नाम महिमा के गायक ब्रह्मज्ञानी कवि थे ।[2] मोक्ष प्राप्ति के लिए इन्होंने निर्गुण भक्ति तथा ज्ञानवाद पर जोर दिया है । निरांत के दार्शनिक-विचारों की विशद व्याख्या आगे की गयी है । इन्होंने भूलणा, कवित्त, कुंडलिया तथा रेख्ता छन्दों में अनेक हिन्दी पदों की रचना की है, जो भाव एवं भाषा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ।[3] इनकी रचनाएं धोल, गरबा, गरबी,

---

१. देखिए प्रा.का.मा. भाग १० ।

२. `नाम निरंजन से अधिक, नाम एक निज नाम, सब०घट में व्यापी रहे,
सब घट में व्यापी रहे, नाम निरंजन ठाम ।`` निरांत काव्य, पृ.२:१० ।

३. `निरांत-काव्य` पृ.२०४ से ब २१३ ।

होरी, केदारो आदि विभिन्न राग रागनियों में उपलब्ध होती है, जिससे इनके संगीत-प्रेम का भी पता लगता है। निरांत ने एक जगह केदार राग की प्रशंसा करते हुए उसे सभी रागों का देवता कहा है—

'केदारो जब कीजिए, मुखवें जपिये राम,
सब रागन को देव है, केदारो महाधाम।'[१]

काव्य-सौष्ठव तथा भाषा-सौंदर्य की दृष्टि से निरांत का एक पद दृष्टव्य है—

'कौन बात पर राजी, न जानु पिया कौन बात पर राजी
मैं रे अजानी कछु मरम न पाऊँ, बहोत बनाई बाजी।
बाजी से बाजी मील खेलें, भूले हैं पंडित काजी,
शिव सनकादिक नारद आवे, भारे पद ब्रह्माजी।
अन्य उपासी को कौन गिनत है, बावन मत मां बिराजी
बाजी की मैं जाऊँ बलिहारी, बाजी ऊपर सब राजी,
बाजीगर को कोऊ न बूझे, ऐसी अक्ल मत छाजी।[२]

इनकी भाषा अरबी, फारसी तथा गुजराती मिश्रित हिन्दी है।[३] निरांत की भाषा के सम्बन्ध में डॉ.मुन्शी ने ठीक ही कहा है[४]—

'His out look was philosophic, and his language, simple and charming. He used urdu words more freely, than any other poet of his time.'

---

१. प्रा.का.मा. भाग १०, पृ.१६५।
२. 'निरांत-काव्य', पृ.६५, भजन १३८।
३. 'आजकाल मां खलक सब खप गया, देख देख दागीना कछू ना रह्या।
एक नाम साहेब बिना सब फना, नेकी-बदी से न्यारा रे, गाफल मना।'
—निरांत-काव्य', पृ.१०७।

४. 'Gujarat & its Literature' - Page 264.

:१६: संत होथी :

ये मोरार साहब के प्रिय शिष्यों में से एक थे। इनका जन्म नेकनाम गाँव में संधी मुसलमान जाति के अन्तर्गत हुआ था। इनके पिता का नाम सिकन्दर था। कहा जाता है कि पिता को मोरार साहब की भजन मंडली में होथी की विशेष उठक बैठक पसन्द न थी। कई बार वे अपने पुत्र के सामने अपना विरोध दर्शा चुके थे। किन्तु इसका कोई प्रभाव न देखकर अन्त में एक दिन पिता ने अफीम का प्याला लेकर कहा— 'या तो तू पी अथवा मैं पीता हूँ, क्योंकि इस प्रकार का बदनाम जीवन अब संधी कौम में नहीं सहा जाता।' पुत्र होथी ने विष पी लिया और कहा जाता है कि पिता को अत्यन्त आश्चर्य हुआ जबकि उन्होंने अपने पुत्र को प्रातः काल उसी भजन मंडली में पाया। पिता ने अपनी भूल स्वीकार करते हुए पुत्र के पैर पकड़ लिए।[1] कुछ भी हो सन्त होथी आडम्बरहीन सरल हृदय भक्तात्मा थे, जिनके हृदयग्राही पद आज भी 'दास-होथी' के नाम से अत्यन्त लोकप्रिय हैं।[2] श्री मेघाणी ने इनके विषय में उचित ही कहा है कि—'अन्य पदों की तरह इस मुस्लिम सन्त के उद्गारों की भी यही विशिष्टता है कि इनमें अनामी एकोपासना का बोध है।'[3]

---

१. 'सोरठी सन्तवाणी' : झवेरचंद मेघाणी कृत : पृ.४२।

२. एक उदाहरण— 'भक्तिभाव बिना नहिं आवे,
गुरुगम क्यु पावे रे,
संतो क्यु पावे रे।'

'भजन सागर' भाग १-२ पृ.७६४।

३. 'सोरठी सन्तवाणी' पृ.४२।

:२०: जीवणदास :

इस नाम के प्राय: तीन कवियों का उल्लेख मिलता है । एक हैं लुनावाड़ा के पास मही नदी के दक्षिण तट पर स्थित सीमलिया गाँव के निवासी, जो जाति से वैश्य थे । दूसरे कवि हैं वेत्रवती : वात्रक : नदी के किनारे अवस्थित मच्छनगर के निवासी जिनकी कुछ गुजराती गरबियाँ : प्रा.का.सु.भाग ४ पृ.३०८: प्रकाशित हुई है । तीसरे सन्त-कवि रवि-भाण सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं जो गोंडल से तीन कोस की दूरी पर घोघावदर गाँव के निवासी थे । ये जाति के चमार थे । इनके पिता का नाम जगाभाई तथा माता का नाम सामबाई था । इनके पदों में 'दासी-जीवण' की छाप मिलती है, क्योंकि इन्होंने ब्रह्म की उपासना दासी भाव से की है जिस पर वैष्णवी-प्रभाव माना जा सकता है ।[1] इसरूप में अब भी कुछ लोग इन्हें स्त्रीभक्त ही समझते हैं । इनके गुरु का नाम भीम था । भीम त्रीकमदास के शिष्य थे । कहा जाता है कि जीवण ने प्राय: सत्तर गुरु बदले, किन्तु पूर्ण श्रद्धा कहीं भी न जम सकी । अन्त में सन्त भीम की भेंट होते ही इनके हृदय कपाट खुल गये ।[2]

---

१. इनके सम्बन्ध में एक लोकमान्यता भी है —
'जीवण जग मां जाणिया , नरमां थी थिया नार,
दासी नाम दरसावियुं, ए राधा अवतार ।'

२. 'जीवण ज्योत जागियुं, भीम प्रगटिया भाण,
दाफडा घेर दीवो हुवो, जीवण पडे जाण ।'

इनकी दो पत्नियाँ बतायी जाती हैं । अत: इनका भेष घरबारी होते हुए भी मस्ताना था । इनके पद मीरांबाई के पदों की तरह अत्यन्त लोकप्रिय हैं । संख्या की दृष्टि से भी इनके पदों की संख्या काफी बतायी जाती है । मृत ढोर के चमड़े को चीर कर साफ करने वाले एक चमार के हृदय में काव्य-वीणा के झनझनाते हुए कोमल तारों को देखकर सचमुच आश्चर्य होता है । इनके एक पद में कबीर की-सी मस्ती है—

'मैं मस्ताना मस्ती खेलु, मैं दीवाना दर्शन का..टेक
जमा खड़ग लई आगे हो तु, मैं सिपाई हु मैदमका,
घनन घनन घडियाला वागे, ताल परवाज अरु मरदंगा
शून्य शिखरगढ़ सैन चलावु, नाम नचावु नवरंगा ।[1]

गुजराती में इनका एक अत्यन्त लोकप्रिय पद है—

'मोर, तुं अवडा ते रूप क्याथी लाव्यो रे,
मोरलो मरत लोकमां आव्यो'

: हे मोर ! तू ऐसा रूप कहाँ से ले आया ।
इतना सुन्दर मोर मृत्युलोक में अवतरित
हुआ है ।:

---

१. 'भजनसागर' भाग १, पृ०३५३, पद ५ ।

:२१: बापूसाहब गायकवाड़ :

बापू का समय सं.१८३५ से १८६६ के आसपास माना जाता है ।[१] अर्थात् ये निरांत और धीरा के समकालीन थे तथा इन दोनों के शिष्य भी । इनके प्रथम गुरु धीरा थे और द्वितीय निरांत । बापू साहब जो बचपन से ही संतप्रेमी थे, अपनी गोठडा : बड़ौदा : की जमीन का प्रबन्ध करने जाया करते, वहीं उन्हें धीरा का समागम और उनके उपदेशों का लाभ मिला । जिस समय निरांत बड़ौदा पधारे, बापू को उनके उपदेशों का भी लाभ मिला और इस रूप में इन दोनों सन्तों का बापू पर काफी प्रभाव पड़ा । कहा जाता है कि पिता ने जब क्रोधित होकर इन्हें घर से बाहर निकाल दिया, ये बेपरवाह होकर निकले थे ।

बापू भी प्रीतम, धीरा और निरांत की तरह ज्ञान-मार्गी थे । इन्होंने हिन्दी-गुजराती में बहुत से पद, गरबी, राजिया और काफियों की रचना की है । बापू-रचित 'बारह-मासा' वर्णन भी उल्लेखनीय है, जिसमें विरह की अपेक्षा ब्रह्मानुभव की मस्ती है । संक्षेप में इनके समस्त काव्य का एक ही विषय है— ब्रह्मज्ञान और वैराग्य । मध्यकालीन गुजराती साहित्य के विद्वान समीक्षक आ.अनंतराय रावल ने इनके विषय में कहा है— "कवि के रूप में प्रीतम तथा निरांत की अपेक्षा बापू का कवि-हृदय, अखा एवं धीरा की कोटि का विशेष प्रतीत होता है ।"[२] बापू साहब के 'चाबखा' भी अखा की

१. 'कबीर-संप्रदाय' पृ.१६७ किशनसिंह चावड़ा ।
२. आ.अनंतराय रावल : मध्यकालीन गु.सा.: पृ.२०० ।

तरह परम्परागत रूढ़ियों, शैव, वैष्णव, शाक्त, योगी, जैन , यति, ऊँच-नीच का भेद रखने वाले ब्राह्मणों और धर्म के ठेकेदार ढोंगी मुल्लाओं और महात्माओं पर करारी चोट करने वाले हैं । उदाहरण के लिए उनका एक पद देखिए[1]:—

निमाज पढ़ता तो बोले बिसमिल्ला रे,
माई रे निमाज पढ़ता तो बोले बिसमिल्ला..टेक ।
तीस रोज रखता और मच्छियों कु चखता,
और बकरे का काटता है गल्ला,
साहेब का जीव बंदे मार क्यों ते द्वारा,
एक बदी खाने दोजख मै टल्ला रे ......२ ।

oo oo

आखरी जवानी का बहोत डैर हेगा,
और साहेब की संग करो सल्ला,
बापु कहे नाम एक अल्ला का सच्च है,
और रफै दफै होयगी तेरी बल्ला रे ... ५ ।

बापू की मातृभाषा यद्यपि मराठी थी तथापि इनके पदों की भाषा शुद्ध गुजराती अथवा सधुक्कड़ी हिन्दी है । इनके हिन्दी पदों मै शब्दों की अनगढ़ योजना है, फिरभी भाषा चोटदार एवं आवेशपूर्ण है ।

---

१. प्रा. का.मा, ग्रंथ ७, पृ.३ ।

:२२: मोजा : : सं.१८४१ – १९०६ :–

गुजरात में इस नाम के एकाधिक कवि हुए हैं। एक हैं सुप्रसिद्ध 'चाबखा' वाले भोजा, और दूसरे हैं सूरत निवासी 'चंद्रहासा–ख्यान' के रचयिता।[1] सूरत में इस कवि के नाम से : भोजा शेरी : एक परिचित गली बतायी जाती है। नवसारी में भोजा भगत की एक देहरी भी है।[2] इन दोनों कवियों के एक होने का कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। हमारा सम्बन्ध 'चाबखा' के रचयिता से है।[3]

भोजा को 'सावलिया' भी कहा जाता है। इससे ज्ञात होता है कि इनके पूर्वज सावली के निवासी थे, किन्तु किसी कारणवश बहुत काल से काठियावाड़ स्थित जेतपुर के पास ही गालोल नामक गाँव में जा बसे थे। इसी कुटुम्ब में करशनदास नामक कणबी के यहाँ संवत् १८४१ में भोजा भक्त का जन्म हुआ। इनकी माता का नाम गंगा-बाई था। भोजा के दो भाई भी बताये जाते हैं जो इनके प्रभाव से 'करमण–भक्त' तथा 'जसो भक्त' के नाम से प्रसिद्ध हुए। कहा जाता है कि बारह वर्ष की अवस्था तक ये दूध पर ही पले। कणबी-परिवार में जन्म लेने वाले इस ग्रामीण बालक को विद्यासंस्कार तो कहाँ से मिलता, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बहुश्रुत होने से इनका योग, वेदान्त तथा संसार का ज्ञान अत्यन्त विशाल था। श्री. अंजारिया ने इस संबन्ध में कहा है कि 'भोजा का

---

१. सूरत–निवासी भोजा की एक रचना 'महीना' :गुज.: प्रा.का.सु., भाग ४, पृ.२८८ पर संग्रहीत है।

२. वही पृ.३०१।

३. इनका विस्तृत जीवन परिचय बृ.का.दो. भाग ७, तथा प्रा.का.मा.ग्रंथ ५ में दिया गया है।

जीवन यदि कुछ अधिक संस्कारजन्य होता, उसका योग तथा अन्य अभ्यास किसी योग्य विद्वान गुरु के पास हुआ होता, तो भोजा भी अखा की तरह कुछ दे सकता था । ऐसा न होने से भोजा की कृति में हृदय की ऊष्मा प्रतीत होती है, प्रामाणिकता और जीवनभर की तन्मयता प्रतीत होती है, किन्तु उसमें संस्कार नहीं, ज्ञान नहीं, व्यवस्था नहीं और इस प्रकार साहित्यकार के रूप में उसकी गणना संभव प्रतीत नहीं होती ।'[१] किन्तु इस प्रकार के विचारों को पुष्टि देना भोजा के प्रति सरासरा अन्याय होगा, क्योंकि संस्कारों के अभाव में भोजा की वाणी कहीं भी कुंठित नहीं हो पायी है । हृदय की ऊष्मा, प्रामाणिकता तथा तन्मयता ही तो एक सच्चे कवि-हृदय की निशानी है । फिर सन्त-साहित्य में जो कुछ भी लिखा गया, अनुभव के बल पर ही । साधना और सच्चाई की यह पगडंडी अव्यवस्थित जरूर है, किन्तु विकृत नहीं । भोजा के चाबखों में चाबुक की-सी जो फटकार है, उसे हम भोजा की असंस्कारिकता नहीं मान सकते । प्रश्न यह है कि अखा के छप्पों के बाद भी भोजा को चाबखा लिखने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? वस्तुत: भोजा के चाबखों में तत्कालीन समाज-दर्शन ही इस प्रश्न का सर्वोचित उत्तर है ।

भोजा के गुरु के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती । जनश्रुति के अनुसार इन्होंने गिरनार की ओर से आनेवाले किसी रामेतवन नामक सन्त से दीक्षा ली थी । भोजा के विवाहित होने का भी कोई ठोस उल्लेख नहीं मिलता । वे अजपा जाप करते थे । कहा

---

१. 'साहित्य प्रवेशिका' पृ.५७-५८ ।

जाता है कि बारह वर्ष के अथक तपोबल से इन्हें अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हुईं। इनकी प्रसिद्धि भी चारों ओर फैलने लगी। इस विषय में एक प्रसिद्ध जनश्रुति है कि सौराष्ट्र के दिवान जी विट्ठलराव : विठोबा : ने इनकी परीक्षा लेने के लिए एक बार इनसे कुछ सुनने के लिए आग्रह किया। कहा जाता है कि भोजा ने १५० चाबखों की रचना उसी समय की थी।

भोजा के सभी चाबखों का पता नहीं लगता, क्योंकि न तो स्वयं ही इनका संग्रह किया और न किसी से करवाया। वे अपने शिष्यों को सुना-सुना, कर याद कराते थे। इनके शिष्यों में `जला भगत` का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये वीरपुर के निवासी थे, जिनकी प्रसिद्धि भी इतनी अधिक हुई कि इन्हें गुजरात में `जला अल्ला` के नाम से अभिहित किया गया। अपने इन्हीं शिष्य के आग्रह पर भोजा कई बार वीरपुर आये थे और वहीं संवत् १९०६ में इन्हों- ने अपना देह त्याग किया। वीर पुर में भोजा का देवल : मन्दिर : है जहाँ उनकी पादुकाएँ पूजी जाती हैं। फतेपुर : अमरेली के पास : में भी इनकी एक गद्दी है जहाँ इनके फोटा और माला की पूजा होती है।

भोजा की प्रसिद्धि उनके चाबखों के कारण है। गुजरात में जहाँ अखा के छप्पा, दयाराम की गरबी, प्रीतम के पद, धीरा की काफियाँ प्रसिद्ध हैं, वहाँ उतने ही आदर एवं रुचि के साथ भोजा के चाबखा भी गाये जाते हैं। चाबखों की भाषा गुजराती है। हिन्दी में इनका कोई स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता, कुछ

फुटकल पद ही मिलते हैं । इन्होंने घोल, कीर्तन, होरी, धमार आदि अनेक राग रागनियों में पदों की रचना की है । भोजा के पदों में शुद्ध हिन्दी के दर्शन दुर्लभ हैं । इनकी भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है जिसमें देशज-शब्दों की बहुलता है । कहीं-कहीं पर एक ही पंक्ति में क्रिया का रूप हिन्दी और विभक्ति का रूप गुजराती दीख पड़ता है । इनकी वाणी के कुछ उदाहरण देखिए[1] :-

'संतो दिया रे अगम पर डेरा,
पिया पियाला जैसे प्रेमरस केरा,
नाथकुं निरख्या ` नेरा ।:.. संतो १
०० ०० ००
'संतो मुनिवरे मन समझाया,
समझी चल्या शब्द सद्गुरु का तो,
परब्रह्म कुं पाया ।... संतो..१.
पाँच कुं मारी पच्चीस कुं वारी,
काम-क्रोध हठाया ।
हद बेहद अनहद गति आवी,
कर्म बिना नी काया ।..२.
कर्म धर्म नी भ्रमणा भागी,
एक लालन सें लेहे लाया ।
अवला हुता तो सवला कीधा,
लखिया फेर [redacted] लखाया ।[2]:.

---

१. प्रा.का.मा. ग्रन्थ ५, पृ. ७७ ।
२. वही पृ. ८१ ।

:२३: मनोहरदास 'सच्चिदानंद':: संवत् १८४४-१९०१ :

ये जूनागढ़ के नागर गृहस्थ थे, किन्तु अखा की भाँति इनके जीवन में भी कुछ ऐसी घटनाएँ घटित हुईं जिनके कारण ये सन्यासी होकर घर से निकल गये। सन्यस्त होने पर इन्होंने अपना नाम बदलकर 'सच्चिदानंद' ग्रहण कर लिया। इनके विरागी होने के प्राय: दो कारण बताये जाते हैं :-

१. जूनागढ़ के वैष्णव स्मार्तों के झगड़ों के कारण ये परेशान हो गये।

२. इनपर भी जाली दस्तावेज़ बनाने का आक्षेप लगाया गया, किन्तु आक्षेप से निर्दोष साबित होते ही ये विरागी जीवन व्यतीत करने लगे। संवत् १८६५ में इन्होंने सन्यास ग्रहण किया।

मनोहर स्वामी अनेक भाषाओं के जानकार थे। संस्कृत, फारसी, गुजराती तथा हिन्दी पर इनका अधिकार था। यही कारण है कि इनकी वाणी में जहाँ विषय वैविध्य है, वहाँ भाषा-वैविध्य भी है। इनके वर्ण्य विषय को हम दो भागों में बाँट सकते हैं :-

:१: केवलाद्वैत-सिद्धान्तों का निरूपण।

:२: बाह्याचार, मन्दिर गमन, मूर्तिपूजा, तीर्थाटन आदि का विरोध, स्वरूपज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्ति तथा सद्गुरु की महत्ता पर विशेष भार दिया गया है।

अखा और मनोहर स्वामी दोनों ही अद्वैतवादी हैं और दोनों ने ही व्रत, तप, जप, सेवा, पूजा, अर्चना, धर्म, कर्म आदि के बाह्याचारों का खण्डन किया है।[1] अन्तर सिर्फ इतना है कि अखा ने आत्म-प्रतीति की बात कही है और मनोहर 'हृदय ग्रंथि का भेद खोलना' अधिक उचित समझते हैं। अखा के 'धन हरे धीखो नव हरे' की भाँति मनोहर ने भी धूर्त पंडितों की खिल्ली उड़ायी है।[2] अखा की वाणी मनोहर से अधिक गूढ़ है और जहाँ सरल है वहाँ भव्य भी है, किन्तु मनोहर में मात्र भावपरक सरलता है। इतना निश्चित है कि आत्म-ज्ञान, जीवन्मुक्ति और पाखण्डियों का भंडाफोड़ इन्होंने खुलकर किया है।

---

१. 'तप, तीरथ, व्रत, स्नान, दान,
जप विध विध कर उपाय,
हृदय-ग्रंथि को भेद न जाणे,
अखा ओसड खाय।'

२. 'भल कलियुग में भांड भवैया,
परम हंस बनी बैठत भैया,
कुत्सित नरकुं कहत कनैया।
ब्रह्मविद्या की बात न जानत,
झुम झननन ठुम निनन बजैया।'
—अ.रा.तथा मनहर पद पृ.४१५।

:२४: जीतामुनि नारायण : उप.का.१६ वीं शती मध्य :

अखा प्रणालिका के अन्तर्गत जीतामुनि का नाम पहुँचे हुए साधकों में लिया जाता है । इनकी वाणी में हमें वेदान्त की सातवीं भूमिका के दर्शन होते हैं जहाँ इन्होंने शब्द की ताली लगा कर ब्रह्माण्ड का द्वार खोला है ।[१] इनके गुरु अखा-प्रणालिका के प्रसिद्ध संत ... हरिकृष्ण थे । संत जीतामुनि का जन्म यद्यपि नडियाद में हुआ था किन्तु इनका निवास-स्थान सूरत के निकट अमरोली गाँव था । इनका आश्रम अश्वनी कुमार के सामने वाले तट पर स्थित है । इनके प्रमुख शिष्यों में कल्याणदास, मोहनदास ब्रह्मचारी : सूरत : आदि का नाम लिया जाता है । नडियाद के संतराम महाराज को भी इनका शिष्य बताया जाता है ।

संत जीतामुनि की रचनाओं का संग्रह `संतोनी वाणी` के अन्तर्गत हुआ है । इनकी हिन्दी रचनाएँ इस प्रकार हैं —

१. काफर बोध ।
२. साखियाँ : हि.गु: ६४ :
३. पद — २२ ।

`काफर-बोध` इनकी विशिष्ट रचना है जिसकी शैली पत्रात्मक है । ऐसा प्रसिद्ध है कि गुजरात के मुस्लिम शासक मुजफ्फरशाह के राज्य में रतनबाई नामक किसी साध्वी नारी को सरकारी नौकरों द्वारा तंग किये जाने पर जीतामुनि ने बादशाह को एक पत्र लिखा था,

---

१. `ताली लागी शब्द की, फूट गया ब्रह्मांड,
साहेब निराला देखिया, सात द्वीप नव खण्ड ।।`—संतोनी वाणी पृ.१५८ ।

जिसमें `मुरीद` और `काफर` की तुलना की गयी है तथा अन्त में हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतिपादन है ।[१] बादशाह को लिखे गये इस पत्र का नाम ही `काफर-बोध` है । इनकी साखियों में भी हमें हिन्दू-मुस्लिम एकता का बोध होता है

`हिन्दू ध्यावे देहरा, मुसलमान ध्यावे मस्जिद,
फकीर वहाँ ध्यावे, जहाँ दोनु की परतीत ।।`[२]

:२५: कल्याणदास : : समाधि सं.१८७६ :

ये संत जीतामुनि के शिष्य थे जो पूर्वाश्रम में उनेल : जि.खंभात : के पाटीदार थे । अखा प्रणालिका के `अन्तिम अवधूत` के नाम से इन्हें अभिहित किया जाता है।अपने गुरु की देखादेखी इन्होंने भी `काफर बोध` की रचना की है जिसमें नाम स्मरण तथा अन्त: साधना पर बल दिया गया है ।[३] हिन्दी गुजराती मिश्रित भाषा में रचित `अजगर बोध` तथा कुछ पद भी इनके नाम मिलते हैं । माया को इन्होंने `धूतारी` कहा है क्योंकि उसकी मोहिनी का रंग पूरे जगत पर चढ़ा है । उसकी धूर्तता से जो बचा है वही अवधूत है —

`धूतारी माया ने सब जग धूत लियो,
धूते बिन रह्यो एक ऐसो अवधूत है ।`[४]

---

१. `आओ, यार । दो शब्द का करो विचार ।
कौन बोलिए काफर, कौन बोलिए मुरिद ?`
०० ०० ००
`ये पानी की पैदाश क्या, हिन्दू क्या मुसलमाना,
पीर जिसका अक्लमंद है, मुरिद दुरस्त ध्याना ।।`

२. `संतोनी वाणी` पृ.३० ।

३. `जिकर की फिकर कर फंद छूटे सबे, दिल म्हेर घर मौज पावे,
सुरत की नुरत में साँई सम्मुख खड़ा, प्रेम की प्रीत सुं तुरत आवे ।`

४. `संतोनी वाणी` पृ.१७२, पद ६ ।

: २६ : रंगीलदास : : उपस्थित काल सं.१८६० :

ये सूरत के निवासी थे । आजसे १५० वर्ष पूर्व राणा जाति में इनका जन्म हुआ था ।[१] बचपन से ही ये शान्त एवं विवेकी थे । तापी के अश्विनकुमार घाट पर ये सत्संग के निमित्त जाया करते थे । नीलकंठ घाट के किसी विष्णुदास नामक महात्मा से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी । हिन्दी में इनके द्वारा रचित `रंगील सतसई` कुंडलिया छन्द में योजित एक बृहत् रचना है । सन्त-काव्य में इस प्रकार की यह एक अनूठी कृति है । काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :—

पंछी अब क्यों सो रहा, देख मच्योरी शोर,
गाफील नैना खोलीये, अब तो भये री भोर ।
अब तो भये री भोर, पार हो गये सवेरा,
कैसे रह्यो अचेत, यहां कोई पार न तेरा ।
`रंगीलदास` लुभाव के, बिरथा नर तन खोया,
विष्ठा विषय के बीच, हाय पामर क्यों सोया ?`

और भी,

`हरिमुख देखन बावरी, मन में खड़ी उदास,
इत उत आवत देखती, लगी इश्क की प्यास ।
लगी इश्क की प्यास, बिलखत नैना मोरे,
बुरी बिरह की पीर, यार कहां मालुम तोरे ।
`रंगीलदास` जग भूलके, लाल को देख भुलाई,
मग में खड़ी है बावरी, हरिमुख देखत आई ।`

रंगीलदास की भाषा में प्रासादिकता एवं भावों में माधुर्य है । दोहा तथा झूलणा छन्दों में इन्होंने ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य के अनेक पद रचे हैं ।

---

१. `राणा भक्तो` भाग १, पृ.६१ ।

:२७ : संतराम : : उप.काल.सं.१८७२—१८८७ :

सागर महाराज की डायरी के आधार पर संतराम [illegible] के अखा प्रणालिका के सन्त प्रतीत होते हैं तथा जीतामुनि उनके गुरु ठहरते हैं, किन्तु सन्तराम की मुख्य गद्दी नडियाद की गुरु-प्रणालिका में जीतामुनि का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता और न सन्तराम की शिष्य परम्परा के जीवित सन्त जानकीदास ही इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं कि सन्तराम का सम्बन्ध प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपेण अखा-प्रणालिका से था ।

संतराम पहुँचे हुए सिद्ध महात्मा थे जो रमते हुए सं.१८७२ के आसपास नडियाद में पधारे । उन्होंने नडियाद के डुंगाकुई वाले खेत में गाँव से दूर एकान्त स्थान में साधना की धूनी रमायी । वे एक खिन्नी के वृक्ष के पोले तने में बैठे रहते और किसीसे याचना न करते, किन्तु सन्त की चमत्कारिक सिद्धियों से प्रभावित होकर गाँव के लोग उनकी ओर खिंचने लगे । दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई जनमेदिनी को देखकर संतराम अन्यत्र जाने को तैयार हुए लेकिन पूंजाभाई नामक एक अनन्य भक्त ने रास्ते में लेट कर कहा— 'सेवक की छाती पर अपने चरण रखते हुए जाइये ।' पूजाभाई के आग्रह पर संतराम रुक गये । उन्होंने सं.१८८७ में वहीं कर जीवित समाधि ली और उनकी आत्म-ज्योति दीपदानों में उतर आयी । वेद में कथित-'ईश्वर सत्य है, संत समागम और सदाचार का पालन' उनका बोधमंत्र था ।[१]

---

१. 'गुजरात सर्व संग्रह' पृ.१३५ ।

बावन साखियों में रची हुई 'गुरु बावनी' को छोड़कर उनके किसी अन्य हिन्दी ग्रन्थ का उल्लेख नहीं मिलता। 'गुरु बावनी' की भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है जिसमें शब्दों को खूब तोड़ामरोड़ा गया है।[1] इसका प्रतिपाद्य है– गुरु निष्ठा तथा मन की एकाग्रता। 'पद संग्रह' में इनके द्वारा रचित कतिपय हिन्दी-गुजराती साखियाँ भी मिलती हैं। यथा :–

:१: सन्तराम मत जानिए दूर देश को वास,
नैनु से अन्तर भये प्राण तमारी पास।[2]

:२: सुरत शब्दमां जा मीली हुओ प्रेम प्रकाश,
सोही कहावे संतराम राममिलन कीआश।[3]

इनकी मुख्य गद्दी नडियाद में है। अन्य मन्दिर बड़ौदा, उमरेठ, पादरा, करमसद, कोयली और रढु में पाये जाते हैं। मुख्य गद्दी :नडियाद: की शिष्य परम्परा इस प्रकार है :–

संतराम महाराज : सं.१८८७ :
|
लक्ष्मणदास :सं.१८८७-१९२५:
|
चतुरदास :सं.१९२५–१९४१:
|
जयरामदास : सं.१९४१~~०००~~–१९४७ :
|
मुगटराम :सं.१९४७– १९६१:
|
माणेकदास :सं.१९६१–१९७३ :
|

---

१. देखिए पदसंग्रह, पृ.१–७ प्रकाशक– संतराम मन्दिर, नडियाद।
२. पदसंग्रह, पृ.९।
३. वही पृ १०।

।

जानकीदास : सं.१६७३ से... :

सन्तराम के अधिकांश शिष्यों ने गुजराती में रचनाएँ की हैं । लक्ष्मणदास के कुछ हिन्दी पद अवश्य मिलते हैं ।

:२८: नभू :-

ये नडियाद-निवासी श्री धानतराय मेहता के सुपुत्र थे । इनका जन्म सं.१८५८ के आसपास तथा अवसान सं.१६२८ माना जाता है ।[१] ये शीघ्र कवि होने के साथ साथ उच्चकोटि के भक्त तथा ब्रह्मज्ञानी थे । आठ वर्ष की अवस्था में से ही ये काव्य-रचना करने लगे थे । हिन्दी, गुजराती और संस्कृत पर इनका अच्छा अधिकार था । इनके सम्पूर्ण कृतित्व को हम ५ भागों में बाँट सकते हैं :१: गुजराती काव्य । :२: हिन्दी-काव्य । :३: संस्कृत-हिन्दी मिश्र काव्य । :४: गद्य । :५: चित्र काव्य । सिद्धान्तत: ये निर्गुण उपासक हैं यद्यपि भावना सगुण-वर्णन की ओर भी ढल पड़ी है । कर्म, उपासना, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और नीति की चर्चा के साथ-साथ 'हरि लीला' वर्णन इन्होंने गरबा, गरबी, प्रबन्ध, धोल, मंगल, प्रभात, होरी, दादरा, रेख्ता आदि में किया है । इनकी विद्वत्ता का परिचय हमें राग, स्वरोदय, काल ज्ञान, सतरंज जैसे विषयों पर लिखे गये पदों में होता है । इनका 'चित्र काव्य' भी अपने ढंग का अनूठा है ।[२] हिन्दी को नभू की विशिष्ट देन है 'चित्र काव्य की शैली' जो हमें अन्य संतों में संभवत: उपलब्ध नहीं होती ।

---

१. 'नभूवाणी' पृ.६ ।
२. वही पृ.२७५-२८० ।

:२६ : छोटम :: सं.१८६८-१९४१ :

उन्नीसवीं शती उत्तरार्ध के प्रमुख सन्तों में महात्मा छोटम का नाम अग्रगण्य है । भक्ति, वैराग्य एवं ज्ञान की गरिमा से पूर्ण छोटम की वाणी सरल एवं हृदय स्पर्शी है । ये सोजित्रा के पास मलातज गाँव : जि.खेड़ा : के निवासी थे । इनके पिता कालीदास साठोदरा जाति के नागर ब्राह्मण थे । छोटम बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि थे । ज्ञान की भूख को मिटाने के लिए ये सदैव बेचैन रहा करते । ज्ञान की अदम्य भूख ने एक दिन इनसे नौकरी तक छुड़वा दी और आत्मा की तृप्ति के लिए ये सत्संग करने लगे । नर्मदा के किनारे किसी पुरुषोत्तम सिद्धयोगी से इन्होंने गुरु मंत्र लिया और ये पूर्णत: वैरागी बन बैठे ।

कृतित्व :

छोटम की गुजराती रचनाओं की संख्या चालीस से अधिक बैठती है जिनका सम्पादन एवं प्रकाशन सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद द्वारा हुआ है । इनमें से अधिकांश रचनाएँ आख्यान शैली की हैं । अत: छोटम पर आख्यान परम्परा का प्रभाव स्पष्ट रूपेण परिलक्षित होता है । पुरुषोत्तम योगीनु आख्यान, नरसिंह-कुँवरनु आख्यान, मदालसा अलर्क आख्यान आदि इसीकोटि की गुजराती रचनाएँ हैं ।

हिन्दी में छोटम कृत साखियाँ, पद, भजन, कीर्तन और लावनियाँ प्रसिद्ध हैं । इनकी साखियों पर उत्तरी भारत के सन्तों और भक्तों की वाणी का विशिष्ट प्रभाव पड़ा है । विशेषत: कबीर, तुलसी, रहीम,

वृन्द तथा बिहारी के दोहों की स्पष्ट छाया हम इन साखियों पर देख सकते हैं। उदाहरण के लिए छोटम की कतिपय साखियाँ यहाँ उधृत की जाती हैं :-

१. दुरिजन सज्जन ना बने,कीजे कोटि उपाय,
धोवे नित नित दूध से, काग हंस न थाय।[१]

२. सुजन वृक्ष समान है, पर उपगार अमाप,
फल छाया दे और कु, आप सहे शीर ताप।[२]

३. निज मत नीको सब कहे, और फरे संवाद,
काग कहे नहि कोकिला, तेरो सुंदर नाद।[३]

छोटम की कुल हिन्दी साखियों की संख्या १५० से कुछ ऊपर बैठती है। ये साखियाँ १० अंगों में विभक्त हैं:[४]

१. कपटी को अंग। २. दुरिजन को अंग।
३. सज्जन को अंग। ४. आदर को अंग।
५. आतुरता को अंग। ६. जीव को अंग।
७. माया को अंग। ८. विविध विषय को अंग।
९. स्वमताभिमान को अंग। १०.आत्मसार को अंग।

१.कपटी को अंग : कवि ने नीति एवं उपदेशपूर्ण शैली में कहा है कि कपटी के मधुर वचनों का विश्वास भूलकर भी नहीं करना चाहिए क्योंकि वह मोर की तरह बोलने में तो मधुर होता है किन्तु भक्षण विषैले नाग का करता है, फिर सामान्य की तो बात

१. 'छोटम कृत साखियाँ' १८ : श्री.छोटमनी वाणी भाग ३, पृ.२४६ :
२. वही :सज्जन को अंग :
३. वही : स्वमताभिमान को अंग १ :
४. देखिए 'श्री.छोटम नी वाणी' भाग ३, पृ.२४३-२५६।

ही क्या है ।[१] हंसों की कीमत ऐसी काग-सभा मैं नहीं होती,[२] जो गुण हीनों का गाँव है ।[३] इसीके अन्तर्गत कवि इन्द्रिय-निग्रह, दोष-दमन, दान-दया तथा धर्म-कर्म की चेतावनी भी देता है ।

२. दुरिजन को अंग : दुर्जन उस कौंच की फली के समान है जिसके स्पर्शमात्र से ही सारे शरीर मैं पीड़ा का संचार होने लगता है ।[४] विषैले सर्प को एक बार मंत्र द्वारा वशीभूत किया जा सकता है किन्तु दुर्जन तो दुष्टों का सिरमौर है जो किसीसे वश मैं नहीं होता ।[५] विद्युत के समान जो अपने कथन मैं अस्थिर होता है,[६] दूसरे के के सुख को देखकर जो ईर्ष्या करता है, वह उस मक्खी के समान दुर्जन है जो अन्य के अहित मैं अपने प्राणों को भी खो बैठता है ।[७] ऐसे दुष्ट लोग लाख प्रयत्न करने पर भी सज्जन नहीं बन सकते क्योंकि कौवे को रोज-रोज-दुग्ध-स्नान कराने पर भी वह हंस नहीं हो जाता ।[८] स्नान-ध्यान, पूजा-पाठ करने से क्या होता है ? जब तक मन मैं दुष्टता के अंकुर पनपते हैं । कवि ने ऐसे पुरुष को 'गंगा का स्वान' कहा है ।[९]

---

१. कपटी को अंग १ ।
२. वही ७ ।
३. वही ६ ।
४. 'दुरिजन को अंग' २ ।
५. वही ३ ।
६. 'पल मैं साचा सो बकै, पल मैं बकै अनीत, बिजली अरु दुरजन की, देखी एकहि रीत -'दुरिजन को अंग'-४ ।
७. वही १२ ।
८. वही १८ ।
९. वही ३८ ।

३. **सज्जन को अंग :** सज्जन पुरुष उस सूर्य के समान है जो अज्ञानरूपी अंधकार को विनष्ट कर सारासार का भेद स्पष्ट कर देता है ।[१] उसका चित्त विपत्तियों के बादलों से डगमगाता नहीं, वह तो हीरा है जो घन की सैकड़ों चोटें सहन करता है फिरभी टूटता नहीं ।[२] कवि ने सज्जन की उपमा उस गंभीर सागर से दी है जिसमें विद्या, गुण और ज्ञान की बाढ़ कभी नहीं आती ।[३]

४. **आदर को अंग :** कवि ने इसके अन्तर्गत 'उद्यम' की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि ईश्वर ने भाग्य की रचना उद्यम करने की प्रेरणा से ही की है । फल और फूल हीन ईख में से गुड़ या शक्कर उद्यम करने पर ही मिलती है ।[४] किरतार को रिझाने के लिए हिम्मत, हिकमत, सत्यता, सुधर्मविचार तथा परोपकार की भावना का होना आवश्यक है ।[५] मनुष्य का शरीर ही परोपकार के लिए बना है ।[६] कवि ने आदर की महत्ता का प्रतिपादन इस प्रकार किया है :-

आदरतें भक्ति बनें, आदर तें तप त्याग,
आदरतें सब छाड़के, मन धारे वैराग ।[७]
आदर को महिमा बड़ो, केतो कहुं बनाय,
छोटम सो महापुरुष को, जश जग में सब गाय ।[८]

---

१. 'सज्जन को अंग'— १ ।
२. वही ५ ।
३. वही ३७ ।
४. 'आदर को अंग' ६ ।
५. 'आदर को अंग'— १३ ।
६. वही १८ ।
७. वही ३७ ।
८. वही ४० ।

५. आतुरता को अंग : सिद्धि के लिए मन में 'बोध' की अपेक्षा आतुरता : लगन : की आवश्यकता है ।[१] गुरु का ज्ञान भी आतुरता के बिना घट में नहीं उतर पाता ।[२] भाव हीन भोजन पेट में अजीर्ण ही पैदा करेगा ।[३] यह आतुरता का ही परिणाम है कि प्रिय विरहिणी सती अग्नि ज्वालाओं को देख भयभीत नहीं होती[४] और आकाश के मेघ तक धरती की प्यास को बुझाने के लिए नीचे उतर आते हैं ।[५] ईश्वर में अनुराग उत्पन्न करने के लिए भी इस लगन की आवश्यकता है ।[६]

६. जीवको अंग : चलती हुई देह को देख प्राय: सभी जीव-जीव चिल्लाते हैं किन्तु जीव का रूप अभी तक सन्देहात्मक ही है । उसे वेद, उपनिषद और पुराणों में वायुरूप, तेजरूप, आणुरूप, अंगुष्ठ-प्रमाण, ब्रह्म प्रतिबिंब, ब्रह्म आभास, अविनाशी, अंशांशी आदि नामों से अभिहित किया है किन्तु जीव वस्तुत: जड़ और चेतन के बीच की गयी कल्पना मात्र है । जीव जिस समय तुरीय-पद को प्राप्त करलेता है तो वह स्वत: शिव बन जाता है । कवि ने जीव के विषय में कबीर की भाँति ही कहा है —

जीव गया तुरीया पदे, जीव शिव हो जाय,
सिंधु में सिंधव मिल्या, द्वैत भेद न रहाय ।[७]

---

१. 'आतुरता को अंग' १ ।
२. वही ३ ।
३. वही ४ ।
४. वही १० ।
५. वही १२ ।
६. वही १७ ।
७. 'जीव को अंग' १६ ।

७. <u>माया को अंग :</u> कवि ने माया को नभ की उस श्यामलता के समान कहा है जो स्थूल शरीर में सूक्ष्म बन कर परिव्याप्त है, जिसे पकड़ना मुश्किल है ।[1] मन की तृष्णा ही वस्तुतः माया है ।[2] ब्रह्म का आभास होते ही माया परदा अपने आप विलीन हो जाता है ।[3]

८. <u>विविध विषय को अंग :</u> इसके अन्तर्गत कुल पाँच साखियाँ हैं जिनमें कवि ने विविध चेतावनियाँ दी हैं । इनके अन्तर्गत सज्जन दुर्जन की पुनरावृत्ति ही प्रतीत होती है ।[4]

९. <u>स्वमताभिमान को अंग :</u> कवि का कथन है कि इस संसार में स्वयं को बुरा कहने वाला कोई नहीं ।[5] कौवा कभी कोकिल के सुंदर नाद की प्रशंसा नहीं करता, उलूक रात्रि को ही सराहा करता है और चकवा भोर की प्रतीक्षा में रातभर चिल्लाता रहता है । प्रत्येक अपनी स्थिति में मशगूल नजर आता है ।[6]

१०. <u>आत्मसार को अंग :</u> कवि ने आत्मसार को निर्गुण की संज्ञा से अभिहित करते हुए उसे सत्, रज् और तम से परे बताया है ।[7] क्षुधा, तृषा, उद्वेग, निद्रा, राग, द्वेष, लज्जा, प्राण, अपान, व्यान, जन्म, मरण, हर्ष,

---

१. 'माया को अंग' २२ ।
२. वही २३ ।
३. वही २५ ।
४. देखिए 'विविध विषय को अंग' सा.४-५ ।
५. 'स्वमताभिमान को अंग' १ ।
६. वही २ ।
७. 'आत्मसार को अंग' १, २, ३ ।

शोक, स्मृति, चिंता, विवेक, वैराग्य, अहं और मद से विलग होकर ही निर्गुण आत्मा का सार प्राप्त किया जा सकता है ।[1]

छोटम की साखियों में इस प्रकार हमें कवि की दीर्घ जीवन दृष्टि, व्यवहारज्ञान तथा सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति के दर्शन होते हैं । उनके पद भी अनुभव की आग में तपे ऐसे स्वर्णिम कण हैं जो बजते हैं तो संगीत की झनझनाहट लेकर —

`जेने रंग न लाव्यो राम को
ते नर पामर मूढ़ गमार रे,
तेने नहिं ठरने की ठार रे ।`

हिन्दी में इनके द्वारा रचित `बोधसुधा` नामक बृहत् ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है, किन्तु अब वह अनुपलब्ध है छोटम की शैली अत्यन्त बोधगम्य एवं प्रभाव पूर्ण है तथा भाषा में गुजराती, ब्रजभाषा और खड़ी बोली का अपूर्व समन्वय है ।

:३०: संत महात्यमराम : : सं.१८८२—१९४५ :

ब्रह्मचारी आश्रम के संस्थापक संत महात्यमराम सीमरडा गाँव : जि.खेडा : के निवासी थे । इनके पिता का नाम हमीर तथा माता का नाम ‥लबाई था । इनके गुरु कोई महात्मा देवराम थे ।

इनके द्वारा रचित निम्न लिखित रचनाएँ मिलती हैं —

---

१. `आत्मसर को अंग` ६—२८ ।

१. छोटी चिन्तामणि ।
२. बड़ी चिन्तामणि ।
३. शब्दबाण सुधा-सिन्धु ।
४. भक्त महिमावली ।
५. कक्का, मास, तिथि इत्यादि—
स्फुट रचनाएँ ।

'भक्तमहिमावली', एक ऐसी विशिष्ट रचना है जिसमें कवि ने पौराणिक सन्तों, दक्षिणभारत के मराठी सन्तों, उत्तरभारत के हिन्दी सन्तों तथा गुजरात के सन्त भक्तों का भक्तिपूर्ण उल्लेख किया है ।

इस ग्रन्थ में जो महत्त्वपूर्ण बात कही जा सकती है वह यह है कि गुजरात के ज्ञानी कवि अखा, गोपाल, नरहरि और बूटो इन चारों का एक ही गुरु ब्रह्मानंद को बताया गया है ।

'अखा, नरहर, बुटा गोपाला,
एच्यों ब्रह्मानंद के बाला ।'
—म.बा, पृ.८ ।

इसी प्रकार कवि ने कबीर के संग अखा को बिठाने का प्रयत्न भी किया है । उदाहरणार्थ—

'ज्यों नम को भंग कबु न थता,
सत्संगे यो काल न लागे लता ।
ए सुसंग कबीर अखाजी कने,
गजमद्र के मस्त के मोती बने ।'

वस्तो की भाँति महात्यमराम ने भी अखा के बहुप्रयुक्त शब्दों का अनेकश: प्रयोग किया है । यही नहीं कहीं-कहीं पर तो भाव, भाषा एवं शैली में अपूर्व साम्य मिलता है । यथा :—

अखा : 'धन हरे धोखो नव हरे ।'

महात्यमराम : 'धन लई धोखा घर दीया ।'

अखा : 'शकटनो भार ज्यम श्वान तारो ।'

महात्यमराम : 'आपमां भार औरनकुं क्या तारे,
वस्तु विश्वासे पड़े जल खारे ।'

:३१: अनवर : : संवत् १८६६-१६७२ :

ये विसनगर के पहुंचे हुए सूफी सन्त थे । इनके पूर्वज अरबस्तान के मूल निवासी थे जो इस्लाम धर्म के प्रचारार्थ भारत वर्ष चले आये । मुसलमानों की बस्ती गुजरात में जैसे जैसे बढ़ी, उनका आगमन भी पाटन में हुआ । विसनगर में इनके पूर्वजों को जागीरें भेंट की गयीं तथा काज़ी का खिताब भी दिया गया । वहीं अनवर मियाँ का जन्म हुआ । इनके पिता का नाम अजामियाँ अनुमियाँ था । धर्म के प्रति अनवर की आसक्ति बचपन से ही थी । ईश्वर के प्रति सहज आकर्षण होते ही संसार असार दिखायी देने लगा । वे प्रारम्भ से ही या तो सत्संग के आदी थे अन्यथा एकान्त खोजा करते । यहाँ तक कि उन्होंने अपनी युवावस्था भी जंगलों और कबरस्तानों में भटक भटक कर गुजार दी ।

अनवर वस्तुतः ज्ञानी एवं मर्मी सन्त थे । एक ओर जहाँ वे सूफी थे, दूसरी ओर भारतीय दर्शन के गहन अध्येता भी थे । उन्होंने अपने काव्य में इन दोनों विचार धाराओं का अपूर्व समन्वय किया था । अखा की भाँति अनवर ने भी अपनी रचनाओं में स्वयं को 'ज्ञानी' कह कर अभिहित किया है —

'संतन का सेवक हो ज्ञानी भेद ब्रह्म का खोलूँ'[१]

और,

'कहेता ज्ञानी सुनो मेरे संतो अगम पंथ मैं पाया रे।'[२]

अनवर रचित भजन, पद, गरबी और गज़ल अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इनके भजनों में जहाँ भारतीय अध्यात्म की झलक है, गज़लों में वहाँ सूफी प्रेमवाद का विस्तार है। भजनों में इन्होंने आत्मा की अमरता,[३] आत्म-ध्यान : आत्म प्रतीति :[४]; गुरु महिमा,[५] अजपाजाप,[६] नाम स्मरण,[७] आदि का बोध कराते हुए आत्मानंद एवं प्रेम रस में सराबोर होने की बात कही है। पदों में बिहाग तथा होरी के पद सर्वश्रेष्ठ कहे जा सकते हैं जिनमें कवि ने संयोग तथा वियोग की सहज अनुभूति करायी है। अखा की जकड़ियों में प्रेम की जो मस्ती है वही अनवर के पदों में है। उदाहरणार्थ —

१. 'बालम मोको रे तुम संग लगन लगी।'[८]

२. 'बालम मोको अब ना छुओ,
मोरी सुरख चुनर मुस्काय,
सीने पे मोरे ना मारो पीचकारी,
अंगीया को दाग लग जाय।'[९]

---

१. 'अनवर काव्य' पृ.३ पद २।
२. वही पृ.५ पद ४।
३. 'आतम अमर रहूँगा रे, काल से नहीं मरूँगा जी।'—'अनवर काव्य' पृ.२, भजन २।
४. 'साधु अजब बना एकतारा होजी,
जाका अलख बजावन हारा, मेरे संतो!'—'अनवर काव्य' पृ.२६, भजन २३।
५. 'ज्ञानी गुरु गुण गावे रे, गुरु का महिमा कहा न जावे जी।' 'वही पृ.२१ भजन १८
६. 'अनवर काव्य' पृ.६२, भजन ४७।
७. वही पृ.७३, भजन ५३।
८. वही पृ.१७७, पद ६।
९. वही पृ.१८४, पद १६।

३. 'सखी री मोको रे पिया बिना कल ना परे,
मंदर अंधेरा मोरी सेज भी सूनी,
बिन पिया जियरा डरे ।'[1]

अखा की भाँति अनवर के पदों में 'ऐन' और 'गैन' शब्दों का प्रयोग क्रमशः विशुद्ध आत्मा तथा भ्रमणाजन्य शरीर के अर्थ में हुआ है । अरबी के इन दोनों अक्षरों में भेद मात्र एक बिन्दी का है । गैन का नुक्ता दूर करने पर ऐन की प्रतीति अपने आप होने लगती है ।[2] ऐन-गैन जिस प्रकार समान अक्षर हैं किन्तु एक नुक्ता— मात्र दोनों में भेद उत्पन्न कर देता है, ठीक उसी प्रकार देह में आत्मा का निवास है किन्तु अहं का आवरण उसे ढक लेता है । जब तक अहं का विनाश नहीं होगा, तब तक आत्मा की प्रतीति असंभव है ।[3]

अनवर की कुल ३६ गरबियाँ गुजराती में रचित हैं जिनमें प्रेम तथा ज्ञानवाद की चर्चा है । गज़लों की भाषा उर्दू है जिनमें उर्दू शायरों की-सी ही मस्ती तथा वर्णन की एकरूपता है । उदाहरणार्थ—

'हमें भी मौसमें सरमामे गस्त होता है,
सनम के कूचे में हरबार हमने खाई ठंड ।
जो देखा मस्त हमें ठंड ने सरे बाजार,
शराबे इश्क की मस्ती से खुद लजाई ठंड ।[4]

---

१. 'अनवर काव्य' पृ.१७८, पद १० ।

२. 'गैन का तुक्ता दूर कर ऐन ही तुझको ज़ान ।'
—'अनवर काव्य' पृ.१६४ ।

३. 'ज्ञानी नुक्ता खुदी का ऐन को कर दे गैन,
जब वह नुक्ता मिट गया, वही ऐन का एन ।'—अनवर काव्य पृ.१६४, पद २६ ।

४. 'अनवर काव्य' पृ.२५४, गज़ल ३५ ।

इस युग के अन्य सन्तों में भक्त कवि कहान, खोजीराम, दास, मूलजी भगत, खुमानबाई, चातकदास, भीमसाहब, मादुदास, बालकदास, राघोभगत, कल्याण दास, जगजीवन, जगजीवनदास तथा माणिकदास आदि का नाम लिया जा सकता है। कहान दीन दरवेश के समकालीन थे जिन्होंने कुछ हिन्दी कुंडलियों की रचना की है। ऐसा प्रसिद्ध है कि सिद्धपुर के कार्तिकी मेले में एक कविता की रचना पर दीनदरवेश से इनका वाद विवाद हुआ था।[1] भक्त खोजीराम पूर्वाश्रम में बाराही के मुखिया थे जो भाण साहब के सदुपदेशों से भक्ति मार्ग की ओर अभिमुख हुए।[2] दास : सं.१८०० : उपनाम प्रतीत होता है। इस नाम से कवि ने हिन्दी में ज्ञान मास तथा करुणा विनति तथा कुछ पदों की रचना की है।[3] मूलजी भगत प्रीतमदास के समकालीन अमरेली के ज्ञानमार्गी सन्त थे जिनके कुछ हिन्दी पदों का संग्रह भजनिक काव्य-संग्रह में हुआ है।[4] खुमानबाई रायघड़ के पास सादरणी गाँव की निवासी थीं जिन्होंने १२ वर्ष की आयु में वैराग्य एवं कौमार्य-व्रत धारण किया था। इन्होंने खुमानदास नामसे रचनाएँ लिखी हैं।[5] चातकदास जाति के वैश्य तथा सौराष्ट्र-निवासी थे। ऐसा प्रसिद्ध है कि एकबार यात्रा में प्यास लगने पर इन्होंने पानी माँगा किन्तु किसी ने नहीं दिया। तभी से इनके मन में वैराग्य जाग उठा। इनके द्वारा रचित कुछ हिन्दी कुंडलियाँ उपलब्ध होती हैं।[6] भीम साहब रविभाण सम्प्रदाय के सन्त थे। त्रीकम साहब इनके गुरु थे। परिचित पद संग्रह में इनके कतिपय हिन्दी पद उपलब्ध होते हैं।[7] मादुदास किसी रामदास के शिष्य थे। पद की अन्तिम पंक्ति में इन्होंने अपने नाम के साथ प्राय: अपने गुरु का नाम भी जोड़ा है।[8] योग साधना इनके पदों का प्रमुख विषय है।[9] बालकदास ईडर शहर के एक चारण

---

१. देखिए 'मिश्रबन्धु विनोद' भाग २, पृ.८६४।

२. 'खोजी भक्त गुरु भाण का, भये भजन में लीन,
भक्ति मारग कठिन है, चढ़े संत परवीन।' — खोगीराम।

३. देखिए— 'नवीन काव्य-दोहन' पृ.१७१—८५।

४. 'हरे कैसे खेलु मैं होरी, छोटे मुख पर कैसर घोरी।
चीर भिजे मारी चोली रे भिजे, मेरी नवरंग, सारी शेरी।' भजनिक काव्य संग्रह पृ.११७

५. देखिए—गु.हि.सा.फा. पृ.४१।

६. देखिए—फा.गु.स.भ.ग्र., पृ.३३१।

७. 'सेज शून्य में त्रिकुटी धून में, अखण्ड ज्योति उजियारी।
भीम साहेब त्रीकम के चरणे, बेर बेर बलिहारी।' प.प.सं., पृ.२६३।

८. 'रामदास चरणे भणे मादुदास, मैं हुं लाल नबीरा।'

९. देखिए— 'परिचित पद संग्रह' पृ.२५९—६३।

सन्त थे जिन्होंने पिता के उपदेशों से गृह संसार का परित्याग कर वैराग्य धारण किया । इनके द्वारा रचित कुछ हिन्दी कुंडलियाँ एवं पद उपलब्ध होते हैं ।[१] राघो भगत भाण साहब के शिष्य थे, पूर्वाश्रम में जो वाल्मीकि की भाँति एक लुटेरे थे किन्तु भाण साहब के सत्संग से 'सज्जन' बन गये ।[२] कल्याणदास : सं.१८८३ : डाकोर निवासी थे । हिन्दी में इनके द्वारा रचित 'छन्द-भास्कर' एवं 'रसचन्द्र' नामक दो ग्रन्थों तथा कुछ फुटकल पदों का उल्लेख मिलता है ।[३] जगजीवन प्रीतमदास के पुरोगामी : १८ वीं शती : थे जो मूल चरोतर के निवासी थे । इनके द्वारा रचित ज्ञानगीता, ज्ञानमूल एवं नरबोध आदि ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है ।[४] एक अन्य जगजीवनदास सूरत के निवासी थे जो निर्मलदास के प्रमुख शिष्यों में से एक थे । इन्होंने विभिन्न खंडों में योजित 'जगजीवन विलास' नामक हिन्दी ग्रंथ की रचना की है ।[५] माणिकदास की जीवन सम्बन्धी सामग्री अनुपलब्ध है । मो.जे विद्याभवन, अहमदाबाद में इनके द्वारा रचित आत्म-विलास, आत्म बोध, कवित्त प्रबन्ध, राम रसायण, सत्संग प्रवाह और संतोष सुरतरु की कुछ हस्तप्रतियाँ उपलब्ध होती हैं । 'कवित्त प्रबन्ध' इनकी प्रमुख रचना है ।

संवत् १६०० के बाद भी गुजरात में हिन्दी सेवी सन्तों की एक लम्बी परम्परा महात्मा गाँधी से लेकर रंग अवधूत तक उपलब्ध होती है । इनमें सागर, श्रीमन्नृसिंहाचार्य, उपेन्द्राचार्य, हरीसिंह, अर्जुन भगत, समर्थराम : राम सनेही :, सत्तारशाह चिश्ती, शंकर महाराज, स्वरूपदास तथा रंग अवधूत आदि प्रमुख सन्त

---

१. देखिए-फा.गु.म.ग्र., पृ.३३३ ।

२. 'राघो लंपट चोर को, मिलीया सद्गुरु भाण ।
शठ मिटाई सज्जन किया, अलख पुरुष निखाण ।।

३. 'गुजरात की हिन्दी सेवा' पृ.२५७ ।

४. देखिए - 'मध्यकालीन गुजराती साहित्य' पृ.१६२ ।

५. 'दुर्लभ नर तन पाय के, हरि से न किन्ही प्रीत ।
जगजीवन पछतायेंगे, चली उमरिया बीत ।।' 'जगजीवन विलास'
: सद्गुरु महिमा खंड :

कवि हैं जिनका परिचय अत्याधुनिक होने के कारण प्रस्तुत निबन्ध में देना उचित नहीं समझा गया । फिरभी, इनकी साहित्यिक प्रतिभा एवं इनके द्वारा रचित हिन्दी कृतियों का उल्लेख हमने यथास्थान अवश्य किया है । आधुनिक युग के इन सन्तों ने संक्रान्ति की बेडोल परिधि में आत्म प्रतीति, कर्मवाद एवं जागरण का सन्देश दिया है, भौतिक जीवन में आध्यात्मिक क्रान्ति पैदा की है । गुजरात के सन्त साहित्य में आधुनिक होते हुए भी इनका योगदान अविस्मरणीय है ।

00 00 00